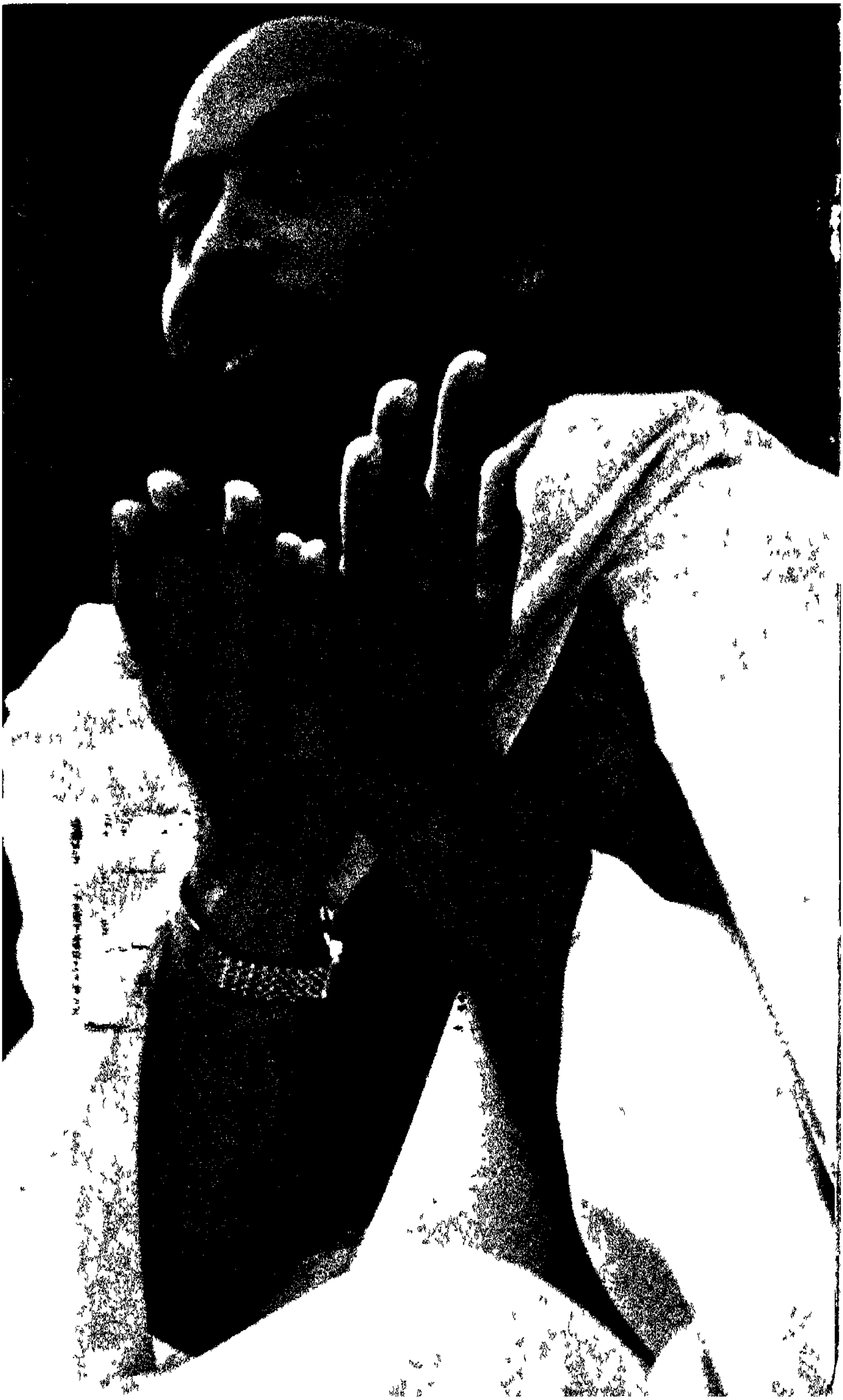


मैं कहता आँखन देखी

भगवान श्री रजनीश

सम्पादक

महीपाल

जीवन जागृति केन्द्र प्रकाशन

प्रकाशक :

ईश्वरलाल नारायणजी शाह
अथ साधु ईश्वर समर्पण
मंत्री, जीवन-जागृति-केन्द्र,
२१, इजरायल, मोहल्ला,
भगवान भवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई-९.   फोन : ३२१०८५

●

●

दूसरा संस्करण
प्रतियाँ : ५०००
जुलाई १९७३

●

मूल्य :
रुपये ६·००

●

मुद्रक :
अमरनाथ मल्लिक,
इंडिया पब्लिशिंग हाउस,
२५१, कामदार चैंबर्स,
सायन (पूर्व), बम्बई-२२.

तुम्हीं ने दर्द दिया है...

.....और आचार्यश्री ने कहा, तब अन्धकार का क्या होगा ? एक के पक्ष में दूसरे को अमान्य नहीं किया जा सकता। प्रकाश है, तो अन्धकार भी है। फूल है, तो काँटे भी हैं। जीवन है, तो मृत्यु भी है। प्रकाश ज्यों-ज्यों दीप्त होगा, अन्धकार क्षीण होता चला जायगा। अन्धकार ज्यों-ज्यों गहन होगा, प्रकाश फीका पड़ता चला जायगा। दोनों जुड़े हैं एक-दूसरे से। बल्कि जुड़े नहीं हैं, एक ही हैं दोनों। विभाजन की, भिन्नता की रेखा कहाँ खींचोगे ? दोनों मिलकर ही सत्य हैं।

उनकी दृष्टि में सत्य कभी खण्डों में विभाजित नहीं है। वह एक है और पूर्ण है। दुख और सुख मिलकर ही एक परिस्थिति बनती है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा मिलकर ही एक जीवन की यात्रा है सब हैं, और अविभाज्य हैं, इसलिए एक हैं।

.पितु वे-एक प्रसंग वस्तु का मण्डन करते हैं तो तुरन्त दूसरे प्रसंग में उस [illegible]ु का खण्डन कर डालते हैं। तब समझने में लोगों के लिए वे बड़े कठिन पड़ जाते हैं।

तब वे जितने सरल और सहज हैं, उतने ही गहन, दुरूह और रहस्यमय बन जाते हैं। और तब लोगों में विवाद खड़े हो जाते हैं कि अभी-अभी 'हाँ' कहा, अभी-अभी इनकार करते हैं। वे शिखर पर खड़े हैं जहाँ से सभी रास्ते उन्हें तो सीधे और ठीक दिखाई पड़ते हैं, परन्तु पथ पर चलने वाले पथिक क्या करें जिनके रास्ते कटते हैं—वे आपस में टकरा जाते हैं। आचार्यश्री जिस तल पर खड़े हुए हैं उस तल से कही हुई बातों में कहीं विरोध नहीं है। उस तल से वे असंगतियों और संगतियों से मिलकर खिले हुए पूर्ण सत्य की बात कहते हैं। किन्तु इस तल पर खड़े हुए लोगों के लिए वह सब बेमानी, अर्थहीन और विपरीत हो जाता है। क्योंकि नभचरों की सहज उड़ान, थलचरों के लिए तो अत्यन्त दुरूह साधना, कष्ट और तपस्या की उपलब्धि है।

इन्हीं सब बातों को, विवादों को, उलझनों को समेट कर आचार्यश्री के सामने स्वयं ही चला गया एक दिन, और सीधे उन्हें ही पूछ कर अपनी, तथा अपने प्रश्नों में अन्य जिज्ञासुओं की उत्सुकताओं का समाधान कर लेना चाहा। वही आपके सामने इस पुस्तिका में अन्तर्निहित है। 'तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना...।' आचार्यश्री के सिवाय इन गुत्थियों को सुलझा भी कौन सकता था...?

—महीपाल

आचार्य रजनीश : एक परिचय

भगवान्श्री रजनीश वर्तमान युग के एक युवा-द्रष्टा, क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी-ऋषि और जीवन-सर्जक हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है; लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि में भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, करते हैं, वह सब जीवन की आत्यंतिक गहराइयों व अनुभूतियों से उद्भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं। जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।

जीवन की चरम ऊँचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबका दर्शन उनके व्यक्तित्व में संभव है।

११ दिसम्बर, १९३१ को मध्यप्रदेश के एक छोटे-से गाँव में इनका जन्म हुआ। दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी इनकी प्रतिभा विकसित होती रही। सन् १९५७ में इन्होंने सागर-विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण की। ये अपने पूरे विद्यार्थी-जीवन में बड़े क्रांतिकारी व अद्वितीय जिज्ञासु तथा प्रतिभाशाली छात्र रहे। बाद में क्रमशः रायपुर व जबलपुर के दो महाविद्यालयों में क्रमशः १ और ८ वर्ष के लिए आचार्य (प्रोफेसर) के पद पर शिक्षण का कार्य करते रहे। इस बीच इनका पूरे देश में घूम-घूमकर प्रवचन देने व साधना-शिविर लेने का कार्य भी चलता रहा।

बाद में अपना पूरा समय प्रायोगिक साधना के विस्तार व धर्म के पुनरुत्थान में लगाने के उद्देश्य से आप सन् १९६६ में नौकरी छोड़ कर आचार्य पद से मुक्त हुए। तब से आप लगातार देश के कोने-कोने में घूम रहे हैं। विराट् संख्या में भारत की जनता की आत्मा का इनसे सम्पर्क हुआ है।

इनके प्रवचनों व साधना-शिविरों से प्रेरणा पाकर अनेक प्रमुख शहरों में उत्साही मित्रों व प्रेमियों ने जीवन जागृति केन्द्र के नाम से एक मित्रों व साधकों का मिलन-स्थल (संस्था) निर्मित किया है। वे भगवान्श्री के प्रवचन व शिविर आयोजित करते हैं तथा पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था करते हैं। जीवन जागृति आन्दोलन का प्रमुख कार्यालय बम्बई में लगभग आठ वर्षों से कार्य कर रहा है। अब तो भगवान्श्री भी अपने जबलपुर के निवास-स्थान को छोड़ कर

१ जुलाई, १९७० से स्थायी रूप से बम्बई आ गये हैं, ताकि जीवन जागृति आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को सहयोग मिल सके।

जीवन जागृति आन्दोलन की ओर से एक मासिक पत्रिका "युकान्द" (युवक क्रांति दल का मुख-पत्र) पिछले दो वर्षों से तथा एक त्रैमासिक पत्रिका "ज्योति-शिखा" पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशित हो रही है। भगवान्श्री के प्रवचनों के संकलन ही पुस्तकाकार में प्रकाशित कर दिये जाते हैं। अब तक लगभग २६ बड़ी पुस्तकें तथा २१ छोटी पुस्तिकाएँ मूल हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। अधिकतर पुस्तकों के गुजराती, अंग्रेजी व मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। १३ नयी अप्रकाशित पुस्तकें प्रेस के लिए तैयार पड़ी हैं। अब तक भगवान्श्री प्रवचन-मालाओं में तथा साधना-शिविरों में लगभग २००० घंटे जीवन, जगत् व साधना के सूक्ष्मतम व गहनतम विषयों पर सविस्तार चर्चाएँ कर चुके हैं।

अब भारत के बाहर भी अनेक देशों में इनकी पुस्तकें लोगों की प्रेरणा व आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही हैं। हजारों की संख्या में देशी व विदेशी साधक इनसे विविध गूढ़तम साधना-पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में प्रेरणा पा रहे हैं। योग व अध्यात्म के संदेश व प्रयोगात्मक जीवन-क्रान्ति के प्रसार हेतु विभिन्न देशों से इनके लिए आमंत्रण आने शुरू हो गये हैं। शीघ्र ही भारत ही नहीं, वरन् अनेक पाश्चात्य देशवासी भी इनके व्यक्तित्व से प्रेरणा व सृजन की दिशा पा सकेंगे।

२५ सितम्बर १९७० से मनाली में आयोजित एक दस दिवसीय साधना-शिविर में भगवान्श्री के जीवन का एक नया आयाम सामने आया। उन्होंने वहाँ कहा कि संन्यास जीवन की सर्वोच्च समृद्धि है, अतः उसे पूर्णता में सुरक्षित रखा जाना चाहिए। उन्हें वहाँ प्रेरणा हुई कि वे संन्यास-जीवन को एक नया मोड़ देने में सहयोगी हो सकेंगे और नाचते हुए, गीत गाते हुए, आनंदमग्न, समस्त जीवन को आलिंगन करने वाले, सशक्त व स्वावलम्बी संन्यासियों के वे साक्षी बन सकेंगे। शिविर में तथा उसके बाद भी अनेक व्यक्तियों ने सीधे परमात्मा से संन्यास की दीक्षा ली। भगवान्श्री इस घटना के साक्षी व गवाह रहे।

इस "नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय (Neo-Sannyas-Inter national) आन्दोलन" में अब तक ४३२ व्यक्तियों ने संन्यास के जीवन में प्रवेश किया है। कुछ ही वर्षों में इनकी संख्या हजारों की होने वाली है। ये संन्यासी जीवन की पूर्ण सफलता व व्यवहार में सक्रिय भाग लेने के साथ ही साथ विशिष्ट साधना-पद्धतियों में रत हैं। इस दिशा में संन्यासियों का एक "कम्यून' "विश्वनीड़" के नाम से पोस्ट-आजोल,

तालुका-बीजापुर, जिला-महेसाणा, (गुजरात) में कार्यरत हो चुका है। ये संन्यासी भगवान्श्री रजनीश की नयी जीवन-दृष्टि, जीवन-सृजन, जीवन-शिक्षा एवं प्रायोगिक धर्म-साधना के बहु-आयामों में निपुण एवं सक्षम होकर भारत एवं विश्व के कोने-कोने में धर्म व संस्कृति के पुनरुत्थान तथा "धर्म-चक्र-प्रवर्तन" हेतु बाहर निकल रहे हैं।

भगवान्श्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है। उनके सम्बन्ध में संकेत मात्र हो सकते हैं। जैसे कि जो व्यक्ति परम आनंद, परम शांति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है उसकी श्वास-श्वास से, रोयें-रोयें से, प्राणों के कण-कण से एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य, एक आह्लाद, एक सुगंध, एक आलोक, एक अमृत की प्रतिपल वर्षा होती रहती है। और समस्त अस्तित्व उससे नहा उठता है। इस संगीत, इस गीत, इस नृत्य को कोई प्रेम कहता है, कोई आनंद कहता है और कोई मुक्ति कहता है। लेकिन, ये सब एक ही सत्य को दिये गये अलग-अलग नाम हैं।

ऐसे ही एक व्यक्ति हैं—भगवान्श्री रजनीश—जो मिट गये हैं, शून्य हो गये हैं; जो अस्तित्व व अनस्तित्व के साथ एक हो गये हैं। जिनकी श्वास-श्वास अंतरिक्ष की श्वास हो गयी है, जिनके हृदय की धड़कनें चांद-तारों की धड़कनों के साथ एक हो गयी हैं। जिनकी आंखों में सूरज-चांद-सितारों की रोशनी देखी जा सकती है। जिनकी मुस्कराहटों में समस्त पृथ्वी के फूलों की सुगंध पायी जा सकती है। जिनकी वाणी में पक्षियों के प्रातः गीतों की निर्दोषता व ताजगी है। और जिनका सारा व्यक्तित्व ही एक कविता, एक नृत्य व एक उत्सव हो गया है।

इस नृत्यमय, संगीतमय, सुगंधमय, आलोकमय व्यक्तित्व से प्रतिपल निकलने वाली प्रेम की, करुणा की लहरों के साथ जब लोगों की जिज्ञासा व मुमुक्षा का संयोग होता है, तब प्रवचनों के रूप में उनसे ज्ञान-गंगा बह उठती है।

उनके प्रवचनों में जीवन के, जगत् के, साधना के, उपासना के विविध रूपों व रंगों का स्पर्श है। उनमें पाताल की गहराइयां हैं और विराट् अंतरिक्ष की ऊँचाइयां हैं। देश व काल की सीमाओं के अतिक्रमण के बाद जो महाशून्य और निःशब्द की अनुभूति शेष रह जाती है उसे शब्दों में, इशारों में, मुद्राओं में व्यक्त करने का सफल-असफल प्रयास भी उनके प्रवचनों में रहता है।

उनके प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे हैं, हृदय-स्पर्शी हैं, मीठे हैं, तीखे हैं और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने व जगाने वाले भी हैं। उनके प्रवचनों और ध्यान के प्रयोगों से व्यक्ति की निद्रा, प्रमाद व मूर्छा टूटती है और वह अन्तः व बाह्य रूपान्तरण, जागरण और क्रांति में संलग्न हो जाता है। ●

एक

•

भेंट-वार्ता

२८-२-'७०

प्रश्न : आचार्यश्री, आपका साहित्य पढ़ा है। आपको सुना भी है। आपकी वाणी बड़ी सम्मोहक और बातें बड़ी साफ हैं। आप कभी महावीर पर बोलते हैं, कभी कृष्ण पर चर्चा करते हैं, कभी बुद्ध की बातें करते हैं, कभी क्राइस्ट और मुहम्मद पर भी बहुत कुछ कह डालते हैं। गीता की अत्यन्त प्रभावोत्पादक मीमांसा करते हैं। वेद और उपनिषद् का विवेचन करने में भी नहीं चूकते। यहाँ तक कि गिरजाघरों में जाकर भी प्रवचन कर आते हैं। ऊपर से आप कहते हैं उपरोक्त व्यक्तियों से मैं किसी से भी प्रभावित नहीं हूं। मेरा इनसे कोई लेना-देना नहीं है। इनको मानते भी नहीं हैं। उधर प्राचीन मान्यताओं और शास्त्रों पर निरन्तर प्रहार करते हैं, धर्मों की बुराई करते हैं। फिर क्या आप अपना पंथ या मत चलाना चाहते हैं, या आप यह बताना चाहते हैं कि आपका ज्ञान अपार है, या आप लोगों को 'कन्फ्यूज' करना चाहते हैं? आठों पहर शब्द ही बोलते हैं। शब्दों से ही समझाते हैं, सूचनाएं देते हैं और शब्दों की पकड़ से कहीं पहुँचोगे नहीं, यह भी बताते रहते हैं। कहते आप यह हैं कि मुझे मानना नहीं, पकड़ना नहीं, नहीं तो वही भूल हो जायेगी; और निर्वेद विलक्षण है ऐसा भी आप दर्शाते हैं। तो कृपया यह बतायें कि आप क्या हैं, कौन हैं और क्या करना चाहते हैं, क्या कहना चाहते हैं, आपका मकसद क्या है?

आचार्यश्री : पहले तो महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट या जीसस—उनसे मैं प्रभावित नहीं हूं। इसका अर्थ यह कि धर्म की एक खूबी है कि वह एक अर्थ मे सदा पुराना है। इस अर्थ में, कि वैसी अनुभूति अनन्त लोगों को हो चुकी है। धर्म की कोई अनुभूति ऐसी नहीं है कि कोई व्यक्ति कहे कि यह मेरी है। इसके दो कारण हैं। एक तो धर्म की अनुभूति होते ही 'मेरा' मिट जाता है। इसलिए 'मेरे' का दावा इस जगत् में सब चीजों के लिए हो सकता है, सिर्फ धर्म की अनुभूति के लिए नहीं

हो सकता। सिर्फ वही अनुभूति 'मेरे' की सीमा के बाहर पड़ती है, क्योंकि इसकी अनिवार्य शर्त है कि 'मेरा' मिट जाय तो ही वह अनुभूति होती है। इसलिए कोई व्यक्ति धर्म की अनुभूति को 'मेरी' नहीं कह सकता। न ही कोई व्यक्ति धर्म की अनुभूति को नयी कह सकता है। क्योंकि सत्य नया और पुराना नहीं होता। इस अर्थ में मैं महावीर, बौद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के नाम, तथा औरों-औरों के नाम भी लेता हूँ। उन्हें अनुभूति हुई है। लेकिन जब मैं कहता हूँ, मैं उनसे प्रभावित नहीं हूँ तो मेरा मतलब यह है कि मैं जो कह रहा हूँ वह मैं उनसे प्रभावित होकर नहीं कह रहा हूँ। मैं खुद भी जान कर कह रहा हूँ। और अगर मैं उनका नाम भी ले रहा हूँ तो चूँकि मेरा जानना उनसे मेल खाता है इसीलिए ले रहा हूँ। मेरे लिए कसौटी मेरा अनुभव है। उस कसौटी पर उन्हें भी मैं ठीक पाता हूँ, इसलिए उनके नाम लेता हूँ। इसलिए प्रभावित उनसे जरा भी नहीं हूँ। मैं जो भी कह रहा हूँ, वह उनसे प्रभावित होकर नहीं कह रहा हूँ। मैं जो भी कह रहा हूँ, अपने ही अनुभव से कह रहा हूँ। लेकिन मेरे अनुभव पर वे लोग भी खरे उतरते हैं। इसलिए उनका नाम भी ले रहा हूँ। वे मेरे लिए गवाह हो जाते हैं। मेरे अनुभवों के लिए वे भी गवाह हैं। लेकिन इस अनुभूति को, जैसा कि मैंने कहा, नया नहीं कहा जा सकता। लेकिन एक दूसरे अर्थ में उसे बिलकुल नया भी कहा जा सकता है। और यही धर्म का बुनियादी रहस्य और पहेली है। उसे नया इसलिए कहा जाता है कि जिस व्यक्ति को भी कभी वह अनुभव होगा उसके लिए बिलकुल ही नया है। उसे उसके पहले नहीं हुआ है। किसी और को हुआ होगा। लेकिन किसी और के होने से उसका क्या लेना-देना है। जिस व्यक्ति को भी अनुभव होगा उसके लिए नया है। उसके लिए इतना नया है, कि वह इसकी तुलना भी नहीं कर सकता कि यह कभी किसी को हुआ होगा। जहाँ तक उस व्यक्ति की चेतना का सम्बन्ध है, यह अनुभूति पहली ही दफा हुई है। और फिर धर्म की अनुभूति इतनी ताजी और कुँवारी है, 'वर्जिन' है, जब भी किसी को होगी उसे यह ख्याल भी नहीं आ सकता है कि यह पुरानी हो सकती है। जैसे फूल सुबह खिला हो, उसकी पँखुड़ी पर ओस हो और अभी सूरज की किरण पड़ी हो, इतनी ताजी है। इस फूल को देखकर, जिसने पहली दफा यह फूल देखा हो, वह यह नहीं कह सकता कि यह फूल पुराना है। हालाँकि रोज सुबह फूल उगते रहे हैं, खिलते रहे हैं। रोज सुबह धूप, ओस और सूरज की किरणों ने नये फूलों को घेरा है। रोज किसी की आँखों ने उन फूलों को देखा होगा। लेकिन जिस आदमी ने पहली दफा उस फूल को देखा है वह यह सोच भी नहीं सकता कि यह पुराना हो सकता है। वह इतना नया है कि अगर वह यह घोषणा करे कि

सत्य पुराना कभी नहीं होता, सदा नया ही है, एकदम मौलिक ही है, तो भी गलत नहीं है।

धर्म को हम इसलिए पुरातन और सनातन कह सकते हैं, क्योंकि सत्य सदा है। और धर्म को हम इसलिए नया और नवीनतम कह सकते हैं, नूतन कह सकते हैं, क्योंकि सत्य का अनुभव जब भी होता है, जिस व्यक्ति पर भी वह आघात पड़ता है, उसकी प्रतीति एकदम नये की, ताजे की और क्वाँरे की होती है। यदि कोई व्यक्ति इन दोनों में से कोई भी एक धारा पकड़ ले तो वह व्यक्ति कभी असंगत मालूम नहीं पड़ सकता। अगर वह कहे कि सत्य सनातन है और कभी न कहे कि सत्य नया है, तो आपको कोई अड़चन और असंगति दिखायी नहीं पड़ेगी। क्योंकि कोई 'इनकंसिस्टेंसी' नहीं है। कोई व्यक्ति पकड़ ले सकता है कि सत्य नया है और नूतन है। गुरजियेफ से पूछेंगे तो वह कहेगा पुराना है, सनातन है। कृष्णमूर्ति से पूछेंगे तो वह कहेंगे नया है, बिलकुल नया है। पुराने से कुछ वास्ता ही नहीं। पुराना है ही नहीं। ये दोनों व्यक्ति बिलकुल ही संगत मालूम पड़ेंगे। तो जो सवाल आप मुझसे पूछ सकेंगे वह गुरजियेफ से नहीं पूछ सकते। वह सवाल कृष्णमूर्ति से भी नहीं पूछ सकते। लेकिन मेरी अपनी प्रतीति ऐसी है कि यह अर्द्धसत्य है। ये दोनों अर्द्धसत्य हैं। अर्द्ध सत्य सदा ही संगत हो सकता है। 'कंसिस्टेंट' हो सकता है। पूर्ण सत्य सदा ही असंगत होगा, 'इनकंसिस्टेंट' होगा। क्योंकि पूर्ण में विरोधी को भी समाहित करना होगा। अधूरे लोग विरोधी को छोड़ सकते हैं। एक आदमी कहता है प्रकाश ही प्रकाश है बस सत्य, तो वह अँधेरे को असत्य कर देगा। उसके असत्य करने से अँधेरा छूट नहीं जाता, लेकिन वह संगत हो जाता है। अब अँधेरे से इनकार ही कर दिया तो अब कोई सवाल न रहा। उसे संगति बिठाने की कोई जरूरत न रही। उसके वक्तव्य सीधे, साफ और गणित के जैसे हो सकते हैं। उसके वक्तव्य में पहेली नहीं रह जायेगी। जो आदमी कहता है अँधेरा ही अँधेरा है, प्रकाश धोखा है उसकी भी कठिनाई नहीं है। किन्तु कठिनाई उस आदमी की है जो कहता है अँधेरा भी है और प्रकाश भी है। जो आदमी दोनों को स्वीकार करता है वह किसी गहरे अर्थ में यह बात भी स्वीकार करेगा कि दोनों—अँधेरा और प्रकाश—एक ही चीज के दो छोर हैं। अन्ततः प्रकाश के बढ़ने से अँधेरा नहीं घट सकता, अगर दोनों अलग चीजें हों। और प्रकाश के कम होने से अँधेरा नहीं बढ़ सकता, अगर दोनों अलग चीजें हों। लेकिन प्रकाश को कम-ज्यादा करने से अँधेरा कम-ज्यादा होता है। अर्थ साफ है, कि अँधेरा कहीं प्रकाश का ही हिस्सा है। उसका ही दूसरा छोर है। इसे छुओ तो वह भी प्रभावित हो जाता है। मैं पूरे ही सत्य को कहने की कोशिश

में कठिनाई में पड़ता हूँ। तो मैं दोनों बातें एक साथ कहता हूँ कि सत्य सनातन है, नया कहना गलत है। और कह भी नहीं पाता कि मैं दूसरी चीज भी कहना चाहता हूँ कि सत्य सदा नया है, पुराना कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। वहाँ मैं सत्य को उसकी पूरी की पूरी स्थिति में पकड़ने की कोशिश में हूँ। और जब भी सत्य को उसकी पूरी स्थिति में पकड़ा जायगा, जब उसे अनेक अर्थ में पकड़ा जायगा तो विरोधी वक्तव्य एक साथ देने होंगे। महावीर का स्याद्वाद ऐसे ही विरोधी वक्तव्यों का संतुलन है, एक ही साथ। जो कहा है पहले वचन में तुरन्त दूसरे में उसके विपरीत बोलना पड़ेगा। क्योंकि उससे, जो विपरीत शेष रह गया है, उसे भी समाहित करना है, उसे भी 'कोम्प्रीहेण्ड' करना है। अगर वह बाहर रह गया तो वह सत्य पूरा नहीं होगा। इसलिए जो सत्य बहुत साफ दिखायी पड़ते हैं और सुलझे हुए दिखायी पड़ते हैं, वे अधूरे होते हैं। पूरे सत्य की अपनी मजबूरी है, वही उसका सौन्दर्य भी है, वही उसकी जटिलता भी है। लेकिन वह जो विपरीत को भी समाहित कर लेना है वही सत्य की शक्ति भी है।

असत्य अपने से विपरीत को समाहित नहीं कर सकता, यह बहुत मजे की बात है। असत्य अपने से विपरीत के विरोध में खड़े होकर ही जीता है। लेकिन सत्य अपने से विपरीत को भी पी जाता है। तो एक अर्थ में असत्य कभी भी बहुत उलझा हुआ नहीं होता—सीधा, साफ होता है। लेकिन सत्य में उलझाव होंगे, क्योंकि सत्य में उलझाव हैं। और सारा जीवन विरोधों से निर्मित है। बिना विरोध के जीवन में एक भी चीज नहीं है। हाँ, हमारा मन जो है, हमारा तर्क जो है वह विरोध से निर्मित नहीं है। तर्क जो है हमारा वह संगत होने की चेष्टा है और अस्तित्व जो है वह असंगत होना ही है। अस्तित्व में सब असंगतियाँ एक साथ खड़ी हैं। जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी है। तर्क में विपरीत को काटकर ही चलते हैं, इसलिए तर्क साफ-सुथरा है। तर्क साफ-सुथरा है—क्योंकि जन्म है तो जन्म है, मृत्यु है तो मृत्यु है। ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते। हम तर्क में कहते हैं अ, अ है; अ, ब नहीं है। हम कहते हैं जन्म जन्म है, जन्म मृत्यु नहीं है। फिर मृत्यु मृत्यु है, मृत्यु जन्म नहीं है। हम साफ-सुथरा तो कर लेते हैं, गणित बिठा लेते हैं, लेकिन जिन्दगी का जो राज था वह चूक गये। इसलिए तर्क से कभी सत्य नहीं पकड़ा जा सकता, क्योंकि तर्क, संगत होने की चेष्टा है और सत्य, असंगत होना ही है। असंगति के बिना सत्य का कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए जो तर्क से चलेंगे वह संगति को पहुँच जायेंगे, सत्य को नहीं। 'कंसिस्टेंट' होंगे, बिलकुल संगत होंगे। उन्हें पराजित नहीं किया जा सकता। लेकिन उससे चूक गये, जो था।

मैं तार्किक नहीं हूँ, यद्यपि निरन्तर तर्क का उपयोग करता हूँ। लेकिन

तर्क का उपयोग ही इसलिए करता हूँ कि किसी सीमा पर ले आकर तर्क के बाहर धक्का दिया जा सके। तर्क को न बढ़ाया जाय तो उसके पार होने का उपाय भी नहीं है। सीढ़ी से चढ़ता हूँ, लेकिन सीढ़ी से प्रयोजन नहीं है एक क्षण, सीढ़ी को छोड़ देने से प्रयोजन है। तर्क का उपयोग करता हूँ कि तर्कातीत का ख्याल आ जाय। तर्क से सिद्ध नहीं करना चाहता, तर्क से तो सिर्फ तर्क को ही असिद्ध करना चाहता हूँ। इसलिए मेरे वक्तव्य अतार्किक होंगे, इल-लाजिकल होंगे। और मैं यह कहना चाहूँगा कि जहाँ तक मेरे वक्तव्य में तर्क दिखायी पड़े वहाँ तक समझना कि मैं सिर्फ विधि का उपयोग कर रहा हूँ। जहाँ तक तर्क दिखायी पड़े वहाँ तक मैं सिर्फ इन्तजाम बिठा रहा हूँ, साज जमा रहा हूँ। गीत शुरू नहीं हुआ है। जहाँ से तर्क की रेखा छूटती है वहीं से मेरा असली गीत शुरू होता है। वहीं साज बैठ गया और अब संगीत शुरू होगा। लेकिन जो साज बिठाने को ही संगीत समझ लेंगे उनको बड़ी कठिनाई होगी। वे मुझसे कहेंगे कि यह क्या मामला है? पहले तो हथौड़ी लेकर तबला ठोंकते थे, अब हथौड़ी क्यों रख देते हैं? हथौड़ी से तबला ठोंक रहा था, वह कोई तबले का बजाना नहीं था। वह सिर्फ इसलिए था कि तबला बजने की स्थिति में आ जाय, फिर तो हथौड़ी बेकार है। हथौड़ी से कहीं तबले बजते हैं? तो तर्क मेरे लिए सिर्फ तैयारी है अतर्क के लिए। और यही मेरी कठिनाई हो जाती है कि जो मेरे तर्क से राजी होकर चलेगा वह थोड़ी ही देर में पायेगा कि मैं कहीं उसे अँधेरे में ले जा रहा हूँ। क्योंकि जहाँ तक तर्क दिखायी पड़ेगा वहाँ तक प्रकाश है, साफ-सुथरी चीजें हैं; लेकिन उसे लगेगा कि मैंने सिर्फ प्रकाश का प्रलोभन दिया था और अब तो मैं अँधेरे में सरकने की बात करने लगा। इसलिए वह मुझसे नाराज होगा और कहेगा, यहाँ तक तो ठीक है अब इसके आगे हम कदम नहीं रख सकते। क्योंकि अब आप अतर्क की बात कर रहे हैं, और हम तो भरोसा किये थे तर्क का। और जो आदमी अतर्क से मोहित है वह मेरे साथ चलेगा ही नहीं, क्योंकि वह कहेगा, आप अतर्क की बातें करें तो ही हम आपके साथ चलते हैं। मेरे साथ दोनों ही कठिनाई में पड़ेंगे। तर्कवाला थोड़ी दूर चल सकेगा, फिर इनकार करेगा। अतर्कवाला चलेगा ही नहीं। उसे पता ही नहीं है कि थोड़ी दूर चल ले तो मैं अतर्क में ले जाऊँगा। लेकिन मेरी समझ है कि जिन्दगी ऐसी है। तर्क साधन बन सकता है, साध्य नहीं। इसलिए मैं निरन्तर तर्कसंगत बातों के आगे-पीछे कहीं न कहीं अतर्क-वक्तव्य भी दूँगा। वे असंगत मालूम पड़ेंगे, वे बिलकुल असंगत मालूम पड़ेंगे, लेकिन वे बहुत सोच-विचार कर दिये गये हैं, वे अकारण नहीं हैं; असंगत हो सकते हैं, अकारण नहीं हैं। मेरी तरफ कारण साफ है।

एक दफा मैं कहूँगा, महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट, उनसे मैं जरा भी प्रभावित नहीं हूँ, हूँ भी नहीं। उनसे प्रभावित होकर मैंने कुछ भी नहीं कहा है। जो भी मैंने कहा है वह मैंने जानकर कहा है। लेकिन जब मैंने जाना है तब मैंने यह भी जाना कि जो उन्होंने कहा है वह सही है। इसलिए जब मैं उनका वक्तव्य देने की बात करूँगा, या उनके सम्बन्ध में कुछ कहूँगा, तो मैं यह भूल ही जाऊँगा कि मैं उनके सम्बन्ध में कह रहा हूँ। मैं पूरा-का-पूरा खड़ा ही हो जाऊँगा। मैं खुद ही खड़ा हो जाऊँगा उनके वक्तव्य में। क्योंकि तब मुझे फासला ही दिखायी नहीं पड़ता। इसलिए जब भी मैं उनके सम्बन्ध में कुछ कहने जाऊँगा तो बहुत गहरे में मैं अपने सम्बन्ध में ही कहता हूँ। इसलिए फिर मैं कोई शर्त नहीं रखूँगा, मैं फिर पूरे भाव से डूब जाऊँगा उनको कहने में। तो जिस व्यक्ति ने यह सुना कि मैं उनसे प्रभावित नहीं हूँ और फिर मुझे पूरा भाव में डूबा हुआ उनके सम्बन्ध में बात करते देखा, तो उसकी कठिनाई स्वाभाविक है। वह कहेगा कि प्रभावित नहीं हैं तो उनकी बात करते वक्त इतना क्यों डूब जाते हैं? इतना तो, जो प्रभावित है वह भी नहीं डूबता। जो प्रभावित है वह भी फासला रखता है। मेरे देखे तो जो प्रभावित है उसको फासला रखना ही पड़ेगा। क्योंकि जो प्रभावित है वह अज्ञानी है। प्रभावित हम सिर्फ अज्ञान में होते हैं, ज्ञान में प्रभाव का, 'इन-फ्लूएंस' का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। ज्ञान में हम जानते हैं। ज्ञान में हम प्रभावित नहीं होते हैं, लेकिन समध्वनियाँ सुनते हैं, रिजोनेन्सेज सुनते हैं। जो हम गा रहे हैं वही गीत किसी और से भी सुनते हैं। और वह गीत, और वह गाने वाला, वह सब इतना एक हो जाता है कि वहाँ प्रभावित होने की भी दूरी और फासला नहीं है। प्रभावित होने के लिए भी दूसरा होना जरूरी है, अनुयायी होने के लिए भी दूसरा होना जरूरी है। इतना फासला भी नहीं है। इसलिए जब मैं महावीर के किसी वक्तव्य की व्याख्या करने लगूँ या कृष्ण की गीता पर बोलने लगूँ तब मैं करीब-करीब अपने ही वक्तव्य की व्याख्या कर रहा हूँ। कृष्ण केवल बहाना रह जाते हैं। मैं बहुत जल्दी भूल जाता हूँ कि कब शुरू किया था उन पर। उनसे शुरू ही करता हूँ, अन्त में तो मैं अपने ही कर पाता हूँ। कब वे छूट गये यह भी मुझे पता नहीं।

अब यह [illegible] मजे की बात है कि मैंने गीता कभी पूरी नहीं पढ़ी। कभी नहीं पढ़ी है पूरी। कई दफा शुरू की है। दो चार दस पंक्तियाँ पढ़ीं और मैंने कहा ठीक है, और मैंने वहीं बन्द कर दी। अब जब गीता पर बोल रहा हूँ तब पहली दफा ही सुन रहा हूँ, इसलिए गीता की व्याख्या करने का कोई उपाय नहीं है मेरे पास। व्याख्या तो वह करे जिसने गीता का अध्ययन किया हो, विचार किया हो,

और सोचा-समझा हो। अब यह बड़े मजे की बात है कि कृष्ण की गीता पढ़ते वक्त मैं उसे उठाकर रख देता हूँ, लेकिन साधारण-सी कोई किताब पढ़ता हूँ तो आद्योपान्त पढ़ जाता हूँ, क्योंकि वह मेरा अनुभव नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। एक बिलकुल साधारण-सी किताब मैं पूरी पढ़ता हूँ शुरू से आखीर तक। उस पर मैं रुक नहीं सकता क्योंकि वह मेरा अनुभव नहीं है। लेकिन कृष्ण की किताब उठाता हूँ तो दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर रख देता हूँ कि बात ठीक है। उसमें आगे मेरे लिए कुछ खुलेगा, ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता। यदि मुझे कोई जासूसी उपन्यास पकड़ा जाय तो मैं पूरा पढ़ता हूँ; क्योंकि मुझे सदा उसमें आगे खुलने के लिए बचता है। लेकिन कृष्ण की गीता मुझे ऐसी लगती है जैसे मैंने ही लिखी हो। इसलिए ठीक है, जो लिखा होगा वह मुझे पता है। वह बिना पढ़े पता है। इसलिए जब गीता पर बोल रहा हूँ तो मैं गीता पर नहीं बोलता। गीता सिर्फ बहाना है। शुरुआत गीता से होती है, बोल तो मैं वही रहा हूँ, जो मुझे बोलना है, जो मैं बोलता हूँ, बोल सकता हूँ, वही बोल रहा हूँ। और अगर आपको लगता है कि इतनी गहरी व्याख्या हो गयी, तो इसलिए नहीं कि मैं कृष्ण से प्रभावित हूँ, बल्कि इसलिए कि कृष्ण ने वही कहा है जो मैं कहता हूँ। मैं जो कह रहा हूँ वह व्याख्या नहीं है गीता की। तिलक ने जो कहा है वह व्याख्या है, गांधी ने जो कहा है वह व्याख्या है। वे प्रभावित लोग हैं। मैं जो गीता में कह रहा हूँ वह गीता से कुछ कह ही नहीं रहा हूँ। गीता जिस स्वर को छेड़ देती है वह मेरे भीतर भी एक स्वर छेड़ जाता है। फिर तो मैं अपने सुर को पकड़ लेता हूँ। मैं अपनी ही व्याख्या कर रहा हूँ, बहाना गीता का होता है। तो कृष्ण पर बोलते-बोलते कब मैं अपने पर बोलने लगता हूँ इसका आपको ठीक-ठीक पता उसी क्षण चलेगा जब आपको लगे कि मैं कृष्ण पर बहुत गहरा बोल रहा हूँ। तब मैं अपने पर ही बोल रहा हूँ।

महावीर के साथ भी वही है, क्राइस्ट के साथ भी वही है, बुद्ध और लाओत्से के साथ और मुहम्मद के साथ भी वही है। क्योंकि मेरे लिए ये सिर्फ नाम के फर्क हैं। मेरे लिए जो मिट्टी के दिये में फर्क होता है वह फर्क है, लेकिन जो ज्योति जलती है, वह एक है। वह मुहम्मद के दिये में जल रही है, कि महावीर के दिये में, कि बुद्ध के दिये में, उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। कई बार मैं मुहम्मद, महावीर और बुद्ध के खिलाफ भी बोलता हूँ, तब और जटिलता हो जाती है कि पक्ष में इतना गहरा बोलता हूँ, फिर खिलाफ बोल देता हूँ। जब भी खिलाफ बोलता हूँ तब मेरा खिलाफ बोलने का कारण यही होता है कि अगर कोई भी व्यक्ति दिये पर बहुत जोर देता है तो मैं खिलाफ बोलता हूँ। जब भी मैं पक्ष में बोलता हूँ, तब ज्योति पर मेरा जोर होता है; और जब भी मैं खिलाफ बोलता हूँ, तब दिये पर मेरा

जोर होता है। जब कोई आदमी मुझे दिये से मोहित मालूम पड़ता है, मिट्टी से मोहित मालूम पड़ता है, तब मैं एकदम खिलाफ बोलता हूँ। उसकी कठिनाई स्वाभाविक है, क्योंकि उसके लिए महावीर के मिट्टी के दिये और महावीर की चिन्मय ज्योति में कोई फर्क नहीं है, वह एक ही चीज समझ रहा है। इसलिए जब भी मुझे ऐसा लगता है कि कोई दिये पर बहुत जोर दे रहा है तो मैं बहुत खिलाफ बोलता हूँ। जब भी मुझे ऐसा लगता है कि ज्योति की बात छिड़ गयी तब मैं एकदम एक होकर बोलने लगता हूँ। और यह फासला है।

महावीर के दिये और मुहम्मद के दिये में बहुत फर्क है। उसी फर्क को लेकर तो जैन और मुसलमान का फर्क है—दिये की बनावट बहुत अलग ढंग की है। क्राइस्ट के दिये और बुद्ध के दिये में बहुत फर्क है। होगा ही। पर वे फर्क शरीर के फर्क हैं, आवरण के फर्क हैं, आकार के फर्क हैं। और जिनको भी आवरण और आकार का बहुत मोह है, मेरा मानना है कि उनको ज्योति दिखायी नहीं पड़ेगी। क्योंकि जिसको भी ज्योति दिखायी पड़ जायेगी वह दिये को भूल जायेगा। ज्योति दिखायी पड़ जाय और दिये याद रह जायें यह असम्भव है। दिये की याददाश्त तभी तक है जब तक ज्योति न दिखायी पड़ी हो। अनुयायियों की हालत ऐसी है जैसा कि वे दिये के नीचे खड़े हों जहाँ अँधेरा होता है, और वहाँ से देख रहे हों। वहाँ से ज्योति तो नहीं दिखायी पड़ती, दिये की पेंदी दिखायी पड़ती है। सबकी पेंदियाँ अलग हैं, और पेंदी के नीचे घना अँधेरा है। अनुयायी वहीं खड़ा रहता है, और पेंदियों के सम्बन्ध में झगड़े और विवाद चलते हैं। तो जब भी मैं किसी को पेंदी के नीचे खड़ा देखता हूँ, तो मैं सख्ती से और खिलाफत में बोलता हूँ। इसलिए मैं निरन्तर कहता हूँ कि अनुयायी कभी भी नहीं समझ पाता है। क्योंकि अनुयायी के लिए, अनुयायी होने के लिए छाया में खड़ा होना पड़ता है, उसे अँधेरे में खड़ा होना पड़ता है। दिये के नीचे खड़ा होना पड़ता है। इसलिए जितना बड़ा अनुयायी अर्थात् उतना ही सेण्टर में। परिधि के अनुयायी थोड़ा बहुत दूसरे के बारे में भी समझ लेते हैं। लेकिन ठीक बीच में खड़े हुए अनुयायी कभी नहीं समझ पाते। लेकिन जिसे भी दिये को देखना है उसे परिधि के बिलकुल बाहर आ जाना चाहिए। उस अँधेरे की छाया के बिलकुल बाहर आ जाना चाहिए। और एक बार ज्योति दिख जाय तो दिये के फर्कों का फासला और विवाद क्या अर्थ रखता है? इसलिए मेरे लिए कोई अन्तर नहीं है। क्राइस्ट पर बोलता हूँ कि कृष्ण पर, कि महावीर पर, कि बुद्ध पर, इससे मुझे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। मैं एक ही ज्योति की बात कर रहा हूँ जो बहुत दियों में जली है, लेकिन उनसे मैं प्रभावित होकर नहीं बोल रहा हूँ। बोल तो मैं वही रहा हूँ जो

मैं मानता हूँ । लेकिन जब भी 'रिजोनेन्स' मुझे मिल जाती है, जब भी मुझे ऐसा लग जाता है कि दूसरी तरफ से भी वही ध्वनि आ रही है, तो उसे मैं इनकार भी नहीं कर सकता हूँ । क्योंकि वह इनकार करना भी उतना ही गलत होगा । वह फिर ज्योति की तरफ पीठ करके खड़ा हो जाना हो जायगा । एक तो अनुयायी ने यह गलती की है कि वह पेंदी के नीचे खड़ा हुआ है । फिर वह पीठ करके खड़ा हो जाता है । यह दोनों, मैं एक-सी गल्तियाँ मानता हूँ । अब अगर कृष्णमूर्ति से आप पूछेंगे तो वह 'रिजोनेंस' भी स्वीकार नहीं करेंगे । वह यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि मुझे जो हो रहा है वह कृष्ण को हुआ होगा । वह यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि मुझमें जो हो रहा है वह किसी और को हुआ होगा । वह इसकी चर्चा ही नहीं चलायेंगे । इसे भी मैं गलत मानता हूँ । क्योंकि सत्य इतना निर्वैयक्तिक है; और इससे कोई सत्य की गरिमा में कमी नहीं पड़ती कि वह और को भी हुआ है । गरिमा बढ़ती है, गरिमा कम नहीं होती । सत्य इतना कमजोर नहीं है कि बासा हो जाय, किसी और को हो गया हो तो बासा हो जायगा । लेकिन इसके इनकार करनेका मोह भी गलत है ।

तो मेरी कठिनाई यही है कि जहाँ-जहाँ मुझे सत्य दिखायी पड़ता है, मैं स्वीकार करूँगा । प्रभावित जरा भी नहीं हूँ । और जहाँ-जहाँ सत्य के नाम पर कुछ और पकड़े हुए लोग मुझे दिखायी पड़ेंगे वहाँ इनकार भी करूँगा और विरोध भी करूँगा । और जब भी जो करूँगा उसे पूरे मन से करूँगा, इसलिए और मुश्किल हो जाऊँगा । समझौते की मेरी वृत्ति नहीं है । और मैं मानता हूँ कि समझौते से कभी भी कोई सत्य पर नहीं पहुँचता । मेरी वृत्ति ऐसी है कि जब भी मैं जो कहूँगा, तब मैं पूरे प्राण से कह रहा हूँ । तो अगर किसी ने ज्योति की बात की तो मैं कहूँगा कि महावीर भगवान् हैं, कृष्ण अवतार हैं और जीसस ईश्वर के बेटे हैं; और किसी ने अगर केवल दिये की बात की तो मैं कहूँगा कि कहने वाला अपराधी है, क्रिमिनल है । दोनों ही स्थिति में जिस वक्तव्य को मैं दे रहा हूँ, मैं पूरा उसके साथ खड़ा हूँ । और जब मैं उस वक्तव्य को दे रहा हूँ तब दूसरे वक्तव्य का मुझे स्मरण भी नहीं है । क्योंकि मेरी समझ यह है कि दोनों वक्तव्य अपने में पूरे हैं और एक-दूसरे को काटते नहीं हैं । अगर मैं आपके शरीर से कहता हूँ, मरणधर्मा है और आपसे कहता हूँ कि आप अमृत हो, तो मैं इन दोनों को विपरीत वक्तव्य नहीं मानता । और न मैं यह मानता हूँ वे कि एक-दूसरे को काटते हैं । न मैं यह मानता हूँ कि इन दोनों में समझौते की कोई जरूरत है । आपका शरीर तो मरेगा ही इसलिए मरणधर्मा है, और अगर आप समझते हैं कि आप शरीर ही हैं तो मैं कहता हूँ आप मरोगे और इसको मैं पूरे बल से कहूँगा । इसमें मैं रत्ती भर गुंजाइश नहीं रखूँगा आपके बचने की । लेकिन आपकी आत्मा की चर्चा है

तो मैं कहूँगा, आप कभी पैदा ही नहीं हुए। अजन्मा हो, मरने का कोई सवाल ही नहीं, अमर हो, अमृत हो। ये दोनों वक्तव्य अपने में पूरे हैं, एक-दूसरे को कहीं काटते नहीं। इनका आयाम अलग है, इनका डायमेंशन अलग है। इसलिए निरन्तर कठिनाई हो जाती है। और फिर कठिनाई इससे जटिल हो जाती है कि मेरे सारे वक्तव्य चूंकि लिखे हुए नहीं हैं, बोले हुए हैं, इसलिए जटिलता और बढ़ जाती है। लिखे हुए वक्तव्य में एक तरह की निरपेक्षता होती है। वह किसी से कहा नहीं गया होता है, लिखा गया होता है। सुनने वाला, पढ़ने वाला सामने नहीं होता इसलिए उसमें वह सम्मिलित नहीं हो पाता। वह बाहर होता है। लेकिन जब बोला जाता है कुछ, तो जो सुन रहा है वह इनक्लूडेड होता है। जब भी मैं कुछ बोल रहा हूँ तो उस दिये गये वक्तव्य के लिए मैं अकेला जिम्मेदार नहीं हूँ, वह आदमी भी जिम्मेदार है जिससे मैं बोल रहा हूँ। इससे जटिलता भारी हो जाती है। जब भी मैं बोल रहा हूँ, तो मेरे वक्तव्य की जिम्मेदारी दोहरी है। मैं तो जिम्मेदार हूँ ही, लेकिन उस वक्तव्य को उस भाँति से निर्मित करवाने में वह आदमी भी जिम्मेदार है जिससे मैं बोल रहा हूँ। अगर वह न होता, उसकी जगह कोई दूसरा होता तो मेरा वक्तव्य भिन्न होता। अगर तीसरा होता तो और भिन्न होता, और अगर मैंने शून्य में वक्तव्य दिया होता तो बिलकुल ही भिन्न होता। तो चूंकि मेरे सारे वक्तव्य बोले गये वक्तव्य हैं, और मैं मानता हूँ कि बोले गये वक्तव्य ही जीवित होते हैं। क्योंकि वक्तव्य को जीवन दोनो से आता है, बोलने वाले से और सुनने वाले से। जब बोलने वाला अकेला बोलता है और सुनने वाला कोई भी नहीं होता तो वह इस तरह का सेतु बना रहा है जिसमें दूसरा किनारा नहीं है। वह सेतु बन नहीं सकता। वह सिर्फ एक किनारे पर खड़ा हुआ सेतु है। वह गिरेगा ही। वह अधर में है। इसलिए जगत के सब श्रेष्ठतम सत्य बोले गये सत्य हैं, लिखे गये नहीं। अगर मैं लिखता भी हूँ तो पत्र लिखता हूँ, क्योंकि पत्र करीब-करीब बोला गया है। उसमें दूसरा सेतु है, उसमें दूसरा तथ्य है, जिससे मैं सेतु बना रहा हूँ। पत्र के अलावा मैंने कुछ नही लिखा। क्योंकि पत्र मुझे बोलने का ही एक ढंग मालूम हुआ। उसमें दूसरा मेरे सामने है कि मैं किससे बोल रहा हूँ। इसलिए हजारों लोगों से जब बोलता हूँ तो हजार वक्तव्य हो जाते हैं। इसमें हर बोलने वाला सम्मिलित हो जाता है तब जटिलता भारी हो जायेगी। लेकिन ऐसा है, और इस जटिलता को जानबूझकर कम करने को मैं उत्सुक नहीं हूँ। मेरी उत्सुकता यह है कि इस जटिलता को समझकर ही आप इस उद्घाटित सत्य की सरलता को समझ पायें तो आपका विकास है। इस जटिलता को कम करने को मैं उत्सुक नहीं हूँ। क्योंकि कम यह की जाय तो कट जायेगी। इसको

सरल किया जा सकता है। लेकिन तब इसके बहुत-से अंग कट जायेंगे। तब यह मुर्दा होगी कटकर। इसकी जटिलता को मैं रत्ती भर कम करने को उत्सुक नहीं हूँ। उत्सुक इसमें हूँ कि आप जटिलता के भीतर भी सरलता को खोज पायें तो आपका विकास है। मेरी कठिनाई कम इसमें हो जाय कि मैं इसको सरल कर दूं। वक्तव्य सीधे और गणित के कर दूं। मेरी कठिनाई बिलकुल ही खत्म हो जायेगी। लेकिन मेरी कठिनाई की मुझे चिन्ता नहीं। वह कोई कठिनाई है नहीं। आप इतनी जटिलता में भी सरलता को देख पायें, इतने विरोध में भी निर्विरोध सत्य को देख पायें, इतने उल्टे वक्तव्य में भी एक ही तारतम्य देख पायें तो आपका विकास होता है, आपकी दृष्टि ऊँची उठती है। यह तभी देख पायेंगे जितने आप ऊपर उठेंगे। तभी यह जटिलता आपको सरल हो जायेगी।

पहाड़ पर चढ़ते हुए हजारों रास्ते एक-दूसरे को काटते हुए बड़े जटिल हैं, लेकिन शिखर पर खड़े होकर एकदम सरल हो जाते हैं। जब सब दिखायी पड़ता है इकट्ठे, एक 'पैटर्न' में, तब मालूम पड़ता है कि सभी पर्वत शिखर की तरफ भाग रहे हैं। न तो वे किसी को काट रहे हैं, न किसी के विरोध में हैं। लेकिन जब कोई आदमी पहाड़ पर चढ़ता है अपने रास्ते पर, तब बाकी सब रास्ते गलत जाते हुए मालूम पड़ते हैं। और ऐसा आदमी जो पहाड़ की चोटी पर से कह रहा हो कि सब ठीक है, या कभी किसी से कह रहा हो, कि यह ठीक है और दूसरा गलत है, और कभी उस दूसरे से कह रहा हो कि तेरा ठीक है और पहले वाला गलत है, तो बहुत जटिलता बढ जाती है। लेकिन सब वक्तव्य एड्रेस्ड हैं। मेरा प्रत्येक वक्तव्य पता-ठिकाना लिये हुए है। वह किसी से कहा गया है। और उसी से ही कहा गया है और उस विशेष स्थिति में ही कहा गया है। अगर एक आदमी को मैं डांवाडोल देखता हूं उसके रास्ते पर तो मैं कहता हूं, सब गलत है यही ठीक है। यह जो वक्तव्य है, यह सिर्फ उसकी सुविधा के लिए है। ऊपर आकर तो वह भी जान लेगा और हँसेगा कि दूसरे रास्ते भी ले आते हैं। लेकिन अपने रास्ते पर, जब वह अधूरे पर खड़ा हो, और उसको यह ख्याल आ जाय कि बगल वाला रास्ता भी ले आता है तब वह डांवाडोल हो और उस रास्ते पर जाने लगे, और उसके चित्त की दशा यह हो जाय कि कल और तीसरा रास्ता उसे दिखायी पड़े और वह उसपर भी जाने लगे तो वह कभी पर्वत पर नहीं आ पायेगा। उससे तो मुझे कहना ही पड़ेगा कि तू बिलकुल ठीक चल रहा है। सब गलत है, तू आ। लेकिन उसके पड़ोस में कोई दूसरे रास्ते पर भी चल रहा हो और मैं उससे भी बात कर रहा हूँ तो उसके साथ भी मेरी वही 'सिचुएशन' है। और जब ये दोनों वक्तव्य दोनों को मिल जाते हैं तो कठिनाई होती है।

महावीर और बुद्ध को इस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। क्योंकि उनके वक्तव्य उनके सामने लिखे नहीं गये। पाँच सौ साल बाद दूसरे को दिक्कत हुई। जो सवाल आप मुझसे पूछ रहे हैं, बुद्ध से नहीं पूछा जा सकता। पाँच सौ साल बाद दिक्कत हुई, इसलिए पाँच सौ साल बाद पंथ बने। पच्चीस पंथ बने। वक्तव्य दिये गये थे, लिखे नहीं गये थे। इसलिए कभी कम्पेयर नहीं किये जा सके। आपको मैंने एक बात कही थी। दूसरे को दूसरी कही थी। उनको तीसरी कही थी। आप तीनों को कभी मौका नहीं मिला लिखित वक्तव्य का, कि आप तीनों कम्पेयर कर लें, तुलना कर लें कि मुझसे यह कहा, तुमसे यह कहा, उनसे यह कहा। ये वक्तव्य निजी थे और आपके भीतर डूब गये थे। जब लिखे गये तब उपद्रव शुरू हुआ। इसलिए पुराने धर्मों ने बहुत दिनों तक अपने शास्त्रों को न लिखे जाने की जिद की कि वह लिखे न जायें। क्योंकि लिखे जाने से कंट्राडिक्शन साफ हो जायेंगे। जैसे ही लिखा जायगा, पता चलेगा यह मामला क्या है? जब तक न लिखा गया है तब तक व्यक्तिगत है। जैसे ही लिखा गया कि व्यक्तिगत नहीं रह जाता। सो जो कठिनाई मेरे सामने है वह बुद्ध, महावीर के सामने नहीं थी। लेकिन अब आगे कोई उपाय नही है। अब तो जो भी कहा जायगा वह लिखा जायगा और कहा तो गया था व्यक्ति से, लिखे जाने से समाज की सम्पत्ति हो जायेगी। फिर सब इकट्ठा हो जायगा, और उस सब इकट्ठे में फिर सूत्र खोजना मुश्किल हो जायगा। मगर अब ऐसा होगा इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। और मैं मानता हूँ अच्छा है। क्योंकि बुद्ध के सामने लिखा गया होता तो बुद्ध इसका उत्तर भी दे सकते थे। पाँच सौ साल बाद जब लिखा गया, और जब सवाल पूछे गये तो उत्तर देने वाला कोई भी नहीं था। इसलिए किसी ने एक वक्तव्य को ठीक माना, उसने एक पंथ बना लिया। उससे विपरीत वक्तव्य को जिसने ठीक माना, उसने दूसरा पंथ बना लिया। जिसके पास जो वक्तव्य था उसने उसके हिसाब से पंथ बना लिया। सारे पंथ ऐसे जन्मे हैं। मेरे साथ पंथ नहीं जनम सकेंगे। क्योंकि मेरा सारा उलझाव सीधा साफ है। कल साफ होगा ऐसा नहीं है, आज ही साफ है। और मुझसे सीधी बात पूछी जा सकती है।

साथ में आपने पूछा है कि शब्दों से ही बोलता हूँ और फिर भी निरन्तर कहता हूँ कि शब्द से कुछ कहा नहीं जा सकता है। बोलने वाले के लिए शब्द के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। साधारणतः शब्द से ही बोला जायगा और फिर भी यह सत्य है कि शब्द से बोला नहीं जा सकता। ये दोनों बातें ही सत्य हैं। शब्द से ही बोला जायगा, यह हमारी परिस्थिति है। यानी जिस सिचुएशन में आदमी है उसमें शब्द के अतिरिक्त और संवाद का कोई उपाय नहीं है। या तो हम आदमी

की परिस्थिति बदलें, तो सिर्फ गहरे साधकों से बिना शब्दों के बोला जा सकता है; लेकिन गहरी साधना में उनको ले जाने के पहले भी शब्दों का उपयोग करना पड़ेगा। एक घड़ी आ सकती है, बहुत बाद में, कि बिना शब्दों के बोला जा सके लेकिन वह घड़ी आयेगी बहुत बाद में, वह है नहीं। जब तक वह घड़ी नहीं है तब तक शब्द से ही बोलना पड़ेगा। निःशब्द में ले आने के लिए भी शब्द से बोलना पड़ेगा। यह परिस्थिति है, सिचुएशन है, लेकिन सिचुएशन खतरनाक है। शब्द से ही बोलना पड़ेगा और यह जानते हुए बोलना पड़ेगा कि शब्द अगर पकड़ लिये गये तो जो हम प्रयास कर रहे थे वह व्यर्थ हो गया। हम प्रयास कर रहे थे कि निःशब्द में ले जायें, बोलें शब्द से। यह मजबूरी थी, कोई उपाय न था। अगर शब्द पकड़ लिये गये तो प्रयोजन व्यर्थ हो गया, क्योंकि ले आना था निःशब्द में। इसलिए शब्द से बोलकर, शब्द के खिलाफ निरन्तर बोलना पड़ेगा, वह भी शब्द में ही बोलना पड़ेगा। उसका भी कोई उपाय नहीं है। चुप हुआ जा सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। वैसे लोग भी हुए हैं जो परिस्थितिगत कठिनाई से चुप हो गये। उनके चुप होने से वे तो झंझट के बाहर हो गये, लेकिन जो उनके पास था वह दूसरे तक नहीं पहुँच पाया। मेरे चुप हो जाने में मुझे कोई अड़चन नहीं है। मैं चुप हो जा सकता हूँ और कोई आश्चर्य नहीं कि कभी हो जाऊँ! क्योंकि जो कर रहा हूँ वह करीब-करीब 'इम्पासिबल एफर्ट' है, वह असम्भव को सम्भव बनाने की चेष्टा है। लेकिन मेरे चुप हो जाने से कुछ हल नहीं होगा। आप तक कोई सम्वाद नहीं पहुँचेगा। खतरा फिर वही का वही है। पहले शब्द पकड़े जा सकते थे। उससे डर था कि शब्द पकड़ जायें तो जो मैं पहुँचाना चाहता था वह नहीं होगा। अब चुप रह जाऊँगा। अब पहुँचाने की बात ही खत्म हो गयी। लेकिन पहले में एक सम्भावना थी कि कुछ लोगों तक पहुँच जायगा। सौ से बात करूँगा तो एक तो शब्द को बिना पकड़े जा सकेगा, निन्यानबे प्रयास व्यर्थ होंगे। एक तो सार्थक हो जायगा चुप रहकर वह भी सम्भव नहीं रह जाता। उसका भी उपाय नहीं रह जाता, इसलिए व्यर्थ चेष्टा करनी पड़ती है। और मजे की बात यह है कि जिसको भरोसा है कि शब्द से कहा जा सकता है वह बहुत ज्यादा नहीं बोलेगा। उसने थोड़ा बोल दिया, बात खत्म हो गयी। लेकिन जिसे भरोसा नहीं है कि शब्द से कहा जा सकता है, वह बहुत बोलेगा। क्योंकि कितना ही बोले उसे पक्का पता है कि अभी भी पहुँचा नहीं। वह और बोलेगा, और बोलेगा। यह जो बुद्ध का चालीस साल निरन्तर बोलना है सुबह से साँझ तक, यह इसलिए नहीं है कि शब्द से कहा जा सकता है इसलिए इतना बोल रहे हैं। यह इसलिए है कि हर बार बोल कर पता लगता है, अभी भी तो नहीं पहुँचा,

फिर बोलो, और ढंग से बोलो, किसी और रास्ते से बोलो, कोई और शब्द का उपयोग करो। इसलिए चालीस साल निरन्तर बोलने में बीत गये। फिर डर भी लगता है, जब चालीस साल निरन्तर बोलूंगा तो कहीं ऐसा न हो कि लोगों को शब्द पकड़ जाय ? क्योंकि चालीस साल से शब्द ही तो दे रहा हूँ, इसलिए फिर निरन्तर यह भी चिल्लाते रहो कि शब्द पकड़ मत लेना। पर यह स्थिति है, और इस स्थिति के बाहर जाने के लिए सिवाय इसके कोई मार्ग नहीं है। शब्द से बाहर जाने के लिए शब्द का ही उपयोग करना पड़ेगा। यह करीब-करीब स्थिति ऐसी है, जैसे यह कमरा है। इस कमरे से बाहर जाने के लिए भी इस कमरे में दस-पाँच कदम चलने पड़ेंगे, बाहर जाने के लिए भी। क्योंकि जहाँ हम बैठे हैं वहाँ से दस कदम तो उठाने ही पड़ेंगे बाहर जाने के लिए। हालाँकि कोई कह सकता है कि कमरे में ही चलने से कमरे के बाहर कैसे पहुँचोगे ? लेकिन कमरे में चलने के ढंग पर निर्भर करता है। एक आदमी वर्तुलाकार चल सकता है, कमरे में गोल चक्कर काट सकता है। वह मीलों चले तो भी बाहर नहीं पहुँचेगा। लेकिन एक द्वार की तरफ चल सकता है, वर्तुलाकार नहीं, लीनियर होगा उसका चलना, रेखाबद्ध होगा। अगर रेखा कहीं जरा भी मुड़ गयी तो चक्कर खा जायगा कमरे के भीतर। अगर रेखा बिलकुल सीधी रही तो दरवाजे से निकल भी सकता है। लेकिन दोनों को चलना तो पड़ेगा कमरे में ही। अगर मैं उस आदमी से कहूँ, जो कमरे में कई चक्कर लगा चुका है, कि दस कदम चलो, बाहर निकल जाओगे। तो वह कहेगा, पागल हो, दस कदम कह रहे हो, मैं मीलों चल चुका और कमरे के बाहर नहीं निकला। उसका कहना भी गलत नहीं है। वह गोल चल रहा है। और एक बड़े मजे की बात है कि इस जगत में, अगर बहुत प्रयास किया जाय तो सब चीजें गोल चलती हैं—सब चीजें। गति गोल है, सर्कुलर है। सब गतियाँ सर्कुलर हैं। अगर आप चेष्टा न करें तो सब चीजें गोल चलेंगी। सीधा चलना बहुत एफर्ट की बात है।

इस जगत में गति सर्कुलर है—चाहे एटम्स चलें, चाहे चाँद चलें, चाहे आदमी की जिन्दगी चले, चाहे विचार चले, इस जगत में जो भी चलता है वह गोल चलता है। इसलिए बड़ी-से-बड़ी साधना सीधा चलना है और वह बड़ा कठिन मामला है। आपको पता ही नहीं चलता कि आप कब गोल हो गये। इसलिए ज्योमेट्री तो कहेगी, सीधी रेखा ही नहीं खींची जा सकती। सब सीधी रेखाएँ भी किसी बड़े वर्तुल के हिस्से हैं। धोखा देती है कि सीधी हैं। कोई सीधी रेखा नहीं है जगत में। स्ट्रेट लाइन खींची नहीं जा सकती, स्ट्रेट लाइन सिर्फ डिफिनिशन में है। युक्लिड कहता है कि स्ट्रेट लाइन सिर्फ व्याख्या है, कल्पना है,

खींची नहीं जा सकती। कितनी ही बड़ी सीधी रेखा खींचें हम, पहले तो हम उसे पृथ्वी पर खींचेंगे और पृथ्वी चूंकि गोल है, इसलिए वह गोल हो जायेगी। इस कमरे में हम सीधी रेखा खींच सकते हैं, लेकिन वह पृथ्वी के बड़े गोल का एक टुकड़ा है।

प्रश्न : एक कर्व है ?

उत्तर : लेकिन कर्व इतनी छोटी है कि हमें दिखायी नहीं पड़ती। उसको हम दोनों तरफ बढ़ाये चले जायें तो हमको पता चल जायगा कि पूरी पृथ्वी का सर्किल लगाकर वह गोल घेरा बन गयी है। वस्तुतः तो खींचना मुश्किल ही है। साधना में सबसे बड़ा जो प्रश्न है, गहरे अन्तर में, वह यही है कि विचार भी वर्तुल चलते हैं, चेतना भी वर्तुल घूमती है। और जो आरडुअसनेस है, जो तपश्चर्या है वह इस वर्तुल के बाहर छलांग लगाने में है। लेकिन कोई उपाय नहीं है। सब शब्द वर्तुलाकार हैं। कभी हम ख्याल नहीं करते कि सब शब्द वर्तुलाकार कैसे हैं ? आप जब एक शब्द की व्याख्या करते हैं तो दूसरा शब्द उपयोग करते हैं। अगर आप डिक्शनरी उठाकर उसमें देखें मनुष्य, तो लिखा है आदमी। और आदमी का शब्द उठाकर देखें, तो लिखा है मनुष्य। यह बड़ा पागलपन है। यानी हमें इन दोनों का ही पता नहीं है, इसका मतलब यह हुआ। लेकिन डिक्शनरी पढ़ने वालों को कभी ख्याल में नहीं आता कि डिक्शनरी बिलकुल सर्कुलर है। उसमें एक जगह जो व्याख्या दी गयी है वही व्याख्या उस शब्द के लिए फिर वहाँ दे दी गयी है। इसका फल क्या हुआ, इससे मतलब क्या हुआ ? मनुष्य आदमी है और आदमी मनुष्य है, तो हम वहीं के वहीं खड़े हैं। इससे व्याख्या हुई कहाँ ? तो सारी व्याख्याएँ वर्तुलाकार हैं, सारे सिद्धान्त वर्तुलाकार हैं। एक सिद्धान्त को समझाने के लिए दूसरे का उपयोग करना, दूसरे के लिए फिर उसी का उपयोग करना पड़ता है। पूरी चेतना वर्तुलाकार है। इसलिए बूढ़े आखिरी अवस्था में करीब-करीब बच्चों जैसे हो जाते हैं। वर्तुल पूरा हो गया।

शब्द कितने ही बोले जायें, वर्तुल में ही घूमते हैं। शब्दों की बनावट वर्तुलाकार है। सीधी रेखा में वे चल नहीं सकते। अगर आप सीधी रेखा में चलें तो शब्द के बाहर पहुँच जायेंगे, पर शब्दों में हम जीते हैं इसलिए अगर मुझे शब्दों के खिलाफ भी कुछ कहना है तो शब्दों में ही कहना पड़ेगा। यह बड़ा पागलपन है, लेकिन इसमें मेरा कसूर नहीं है। ऐसी स्थिति है। शब्द बोलता रहूँगा, शब्द के खिलाफ बोलता रहूँगा। इस आशा में शब्द बोलूँगा, कि शब्द के बिना आप समझ नहीं सकते हैं। इस आशा में शब्द के खिलाफ बोलूँगा कि शायद शब्द की

चक्कर से बच जायें। अगर ये दोनों घटनाएँ घट सकें तो ही मैं आपको जो कहना चाहता हूँ वह पहुँचा पाऊँगा। अगर आप सिर्फ मेरे शब्द समझ गये तो भी चूक गये। अगर आप शब्द ही न समझे, तो भी चूक गये। शब्द तो मेरे समझने ही पड़ेंगे लेकिन शब्द के साथ-साथ जो निःशब्द का इंगित है वह भी समझना पड़ेगा। इसलिए शास्त्रों के खिलाफ बोलता रहूँगा और इसलिए आज नहीं कल मेरे वचन सब शास्त्र बन जायेंगे। सब शास्त्र इसी तरह बने हैं। ऐसा एक भी कीमती शास्त्र नहीं जिसमें शब्द के खिलाफ वक्तव्य न हो। इसका मतलब यह हुआ कि एक भी ऐसा शास्त्र नहीं है जिसमें शास्त्र के खिलाफ वक्तव्य न हो। चाहे गीता हो, चाहे कुरान हो, चाहे बाइबिल हो, चाहे महावीर हों, चाहे बुद्ध हों। तो ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है कि मेरे साथ कुछ भिन्न हो जायगा। वही असम्भव कोशिश चलती है, वही चलेगी। शब्द के खिलाफ बोल-बोल कर शब्द बहुत बोल चुका होऊँगा। कोई-न-कोई उन्हें पकड़ लेगा और शास्त्र बन ही जायेंगे; लेकिन इस डर से बोलना बन्द नहीं किया जा सकता। क्योंकि सौ के साथ एक के निकलने की सम्भावना है। न बोलने के साथ एक की भी सम्भावना खो जाती है। फिर डर इसलिए भी नही है कि मेरे शब्दों और शास्त्रों के खिलाफ बोलने वाला कोई-न-कोई फिर मिल जायगा, इसलिए डर नहीं है।

अब यहाँ एक दूसरी उलझन खड़ी हो जाती है। वह यह है कि इस जगत में मेरा काम कभी भी कोई वही आदमी करेगा जो मेरे खिलाफ बोलेगा। यह जो कठिनाई है वह ऐसी है कि आज अगर बुद्ध के पक्ष में काम करना है तो बुद्ध के खिलाफ बोलना पड़ेगा। क्योंकि उनके शब्द किन्हीं के पत्थर की तरह पकड़ गये हैं और उन पत्थरों को तब तक हटाया नहीं जा सकता, जब तक बुद्ध को न हटाया जाय। क्योंकि बुद्ध की प्रतिष्ठा के साथ वह पत्थर उनकी छाती पर जमे हुए हैं। पत्थर को हटाना है तो बुद्ध को गिराना पड़ेगा। तो ही वह पत्थर हटें। अगर बुद्ध को न गिराओ तो वह पत्थर न हटें। अब मेरे जैसे आदमी की मजबूरी ख्याल में आ सकती है कि मुझे बुद्ध के खिलाफ बोलना पड़े, और यह जानते हुए कि उनका काम कर रहा हूँ। मगर जिनको बुद्ध के नाम के साथ आग्रह पकड़ गया है, शब्द के साथ आग्रह पकड़ गया है, उन्हें हिलाने का क्या उपाय है ? जब तक बुद्ध न हिले तब तक वह नहीं हिल सकते। तो अकारण बुद्ध के साथ झंझट करनी पड़ती है इस आदमी को हिलाने के लिए। जब तक वेद न हिलाया जाय तब तक यह आदमी नहीं हिल सकता। यह वेद को पकड़े बैठा हुआ है। जब इसको पक्का हो जाय कि वेद बेकार है तभी यह छोड़ सकता है। एक दफा खाली हो तो कुछ आगे बढ़ सकता है। हालाँकि जो वेद ने कहा है वही मैं इससे कहूँगा, खाली होने के बाद। तब

जटिलता और बढ़ जाती है। तब अकारण गलत मित्र पैदा हो जाते हैं और गलत शत्रु पैदा हो जाते हैं। वैसे सौ में निन्यानबे मौके गलत मित्रों और गलत शत्रुओं के ही हैं। गलत मित्र वह है जो मेरी बात को शास्त्र की तरह पकड़ लेंगे और गलत शत्रु वह है जो कि मेरी बात को शास्त्र की शत्रुता मानकर पकड़ लेंगे, कि मैं दुश्मन हूँ शास्त्रों का। मगर ऐसा है, और ऐसा होगा, और इसमें कुछ बेचैनी का कारण नहीं है। क्योंकि सारी स्थिति ऐसी है।

प्रश्न : तो आप लिखना नहीं चाहेंगे ?

उत्तर : नहीं लिखना चाहूँगा। नहीं लिखना चाहूँगा कई कारणों से। एक तो इसलिए कि लिखना मेरी दृष्टि में एब्सर्ड है, व्यर्थ है। व्यर्थ इसलिए कि किसके लिए ? यह लिखना मेरे लिए ऐसा है कि पत्र लिखा है, लेकिन पता नहीं मालूम; कि लिफाफे में बन्द करके उसको भेजना कहाँ है ? वक्तव्य सदा ही एड्रेस्ड है। लिखते वे लोग हैं जो मास के लिए एड्रेस कर रहे हैं। वह भी एड्रेस कर रहे हैं अनजान भीड़ के लिए। लेकिन जितनी अनजान भीड़ हो उतनी ही ओछी बातें कही जा सकती हैं। जितना ही जाना व्यक्ति हो उतनी ही गहरी बातें कही जा सकती हैं। गहरे सत्य व्यक्ति से कहे जा सकते हैं। भीड़ से काम चलाऊ बातें कही जा सकती हैं। भीड़ से कभी गहरे सत्य नहीं कहे जा सकते। क्योंकि जितनी बड़ी भीड़ हो उतनी ही समझ कम हो जाती है, और अगर भीड़ बिलकुल अज्ञात हो तो समझ को शून्य मानकर चलना पड़ता है। इसलिए जितना मास लिट्रेचर होगा, जमीन पर आ जायगा। आसमान की उड़ान नहीं रह जायेगी। अगर कालिदास के काव्य में कोई खूबी है और आज के कवि में कोई खूबी नहीं है तो उसका कोई फर्क कालिदास और आज के कवि में नहीं है। कालिदास का वक्तव्य एड्रेस्ड है, किसी सम्राट् के सामने कहा गया है। किन्हीं दस-पाँच चुने हुए लोगों के बीच कही गयी कविता है। आज का कवि अखबार ही छाप रहा है। कोई जिसे चाय की दूकान में पढ़ेगा, कोई मूंगफली खाते हुए पढ़ेगा, कोई हुक्का पीते हुए देख लेगा एक नजर—कौन, वह भी पता नहीं। वह जो अनजान आदमी है उसको ही हमें आखिरी मानकर चलना पड़ रहा है। अगर लिखना हो तो उसको ध्यान में रखकर लिखना पड़ा है। और मेरी तो तकलीफ यह है कि हमारे बीच जो श्रेष्ठतम हैं उनसे भी कहने में मुश्किल है सत्य। तो हमारे बीच जो निकृष्टतम हैं उनसे तो कहने का कोई उपाय ही नहीं है। हमारे बीच जो श्रेष्ठतम है, जिनको हम कहें चूजेन फ्यू, जो गहरे से गहरा समझ सकते हैं। उनमें से भी सौ से कहूँगा तो एक समझेगा, निन्यानबे चूक जायेंगे। भीड़ को तो कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। और लिखा तो भीड़ के लिए जा सकता है, व्यक्ति के लिए कहा जा सकता है।

दूसरे भी कारण हैं। मेरा मानना है कि हर मीडियम के साथ कंटेंट बदल जाता है। हर माध्यम के साथ विषय-वस्तु बदल जाती है। आप जैसे ही माध्यम बदलते हैं विषय वस्तु-वही नहीं रह जाती। माध्यम भी विषय-वस्तु को बदलने की चेष्टा करता है। यह एकदम से दिखायी नहीं पड़ता। जब मैं बोल रहा हूँ तब माध्यम और है। एक तो जीवंत है, सुनने वाला भी जीवित मौजूद है, मैं भी जीवित मौजूद हूँ। जब मैं बोल रहा हूँ तब यह मुझे सुन ही नहीं रहा है, मुझे देख भी रहा है। मेरे चेहरे की हरकत में फर्क, मेरी आँखों पर जरा-सी बदलती हुई लहर, मेरी उँगली का उठना या गिरना, वह सब उसे दिखायी भी पड़ रहा है। वह सुन भी रहा है, देख भी रहा है। मेरे शब्द ही नहीं सुन रहा है, मेरे ओठ भी देख रहा है। शब्द ही नहीं कहते, ओठ भी कहते हैं। मेरी आँखें भी कुछ कह रही हैं। ये सब इकट्ठा पी रहा है वह। यह सब इकट्ठा जा रहा है। उसके भीतर कंटेंट अलग होगा इसका। जब वह एक किताब पढ़ रहा है तब मेरी जगह सिर्फ काले अक्षर हैं, काली स्याही है और कुछ भी नहीं है। तो मैं और काली स्याही इक्वीवेलेन्ट नहीं हैं, इनमें कोई लेन-देन नहीं है, इनका कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। काली स्याही में न कोई भाव उठते, न कोई दृश्य उठते, न कोई जीवन है। मुर्दा टका हुआ सन्देश है। बहुत बड़ा हिस्सा खो गया जो बोलने के साथ जीवन्त है। एक मुर्दा वक्तव्य उसके हाथ में है। बड़े मजे की बात है कि किताब पढ़ने के लिए इतना अटेंटिव होना जरूरी नहीं है। सुनने वालों में भी फर्क होते हैं। सुनने वाला जब सुनता है, तब, और जब पढ़ता है तब, दोनों में बुनियादी ध्यान के फर्क हो जाते हैं। सुनते समय आपको पूरा-पूरा एकाग्र होना पड़ता है, क्योंकि जो बोला गया है वह दोहराया नहीं जायगा। उसको वापस लौट कर नहीं देख सकते। वह खो गया। प्रतिपल जब मैं बोल रहा हूँ तो जो भी बोला जा रहा है वह अनन्त खाई में खोता चला जा रहा है। अगर आपने पकड़ लिया तो पकड़ लिया, अन्यथा वह गया। वह फिर नहीं लौटेगा। किताब पढ़ते वक्त कोई डर नहीं है, आप दस दफे लौट कर किताब पढ़ सकते हैं। इसलिए बहुत अटेंटिव होने की जरूरत नहीं है। इसलिए दुनिया में जब से किताब आयी तबसे ध्यान कम हुआ, अटेंशन कम हो गयी। होगी ही वह, कंटेंट बदल गया। किताब के साथ तो ऐसा है न, कि आप अभी एक पूरा पन्ना पढ़ जाते हैं और फिर ख्याल में आता है कि अरे, कुछ ख्याल में नहीं आया। फिर उल्टा के पढ़ लेते हैं, लेकिन मुझे उलटाया नहीं जा सकता। मैं गया। यह बोध, कि जो सुना जा रहा है वह खो जायगा, एक दफे चूका कि सदा के लिए चूका, वह कभी पुनरुक्त नहीं हो सकेगा, आपकी चेतना को पीक पिच में रखता है, आपकी चेतना को वह ऊँचे-से-ऊँचे

शिखर पर रखता है ध्यान के। फिर जब आप बैठे हैं आराम से पढ़ रहे हैं, चौ गया, कोई हर्जा नहीं, पन्ने उलटाये, फिर पढ़ गये। समझ कम होती है किताब के साथ, पाठ बढ़ता है। समझ ध्यान के साथ कम हो जाती है। इसलिए अकारण नहीं है कि बुद्ध या महावीर या जीसस बोलने के माध्यम को चुनते हैं। लिखा जा सकता था। पर वे बोलने के माध्यम को चुनते हैं उसके दोहरे कारण हैं। एक तो बोलने का माध्यम बड़ा माध्यम है। उसके साथ बहुत चीजें और जुड़ी हैं जो लिखने में खो जायेंगी। इसलिए आप ध्यान रखें, जैसे ही फिल्म आयी, उपन्यास खो गये। क्योंकि फिल्म ने वापस जीवंत कर दी चीज। उपन्यास को कौन पढ़ेगा ? वह मृत है, मृतवत हो गया। उपन्यास ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रह सकता। इसकी जान चली गयी। वह विधा खो जायेगी, क्योंकि अब हमारे पास ज्यादा जीवंत माध्यम है। मैकलोहान इसको हाट मीडियम कहता है। यह हाट मीडियम है। तो टेलीविजन है या फिल्म है, यह जीवंत है, इसके खून में गर्मी है। किताब कोल्ड मीडियम है, बिलकुल डेड कोल्ड है, ठण्डी है। इसमें कोई जान नहीं है। खून बहता नहीं है इसमें। आपका टेलिफोन खो जायगा, जिस दिन भी हम विजन जोड़ देंगे उसमें जैसे रेडियो खो गया टेलीविजन के सामने। रेडियो अब कोल्ड मीडियम हो गया। टेलीविजन हाट मीडियम होगा तो बोलना, मेरे हिसाब से, हाट मीडियम है। उसमें खून है, गर्मी है।

अभी तक हम भाषा का कोई उपाय नहीं कर सके हैं, जैसे कि अब मुझे किसी चीज पर जोर देना होता है तो जरा जोर से बोलता हूँ। उसका बोलने का न्यूएंस बदल जाता है, बोलने की तर्ज बदल जाती है, उसका जोर बदल जाता है। लेकिन शब्द में कोई उपाय नहीं है। शब्द बिलकुल डेड है। प्रेम, चाहे प्रेम करने वाले ने लिखा हो, चाहे प्रेम न करने वाले ने लिखा हो, चाहे प्रेम में चलने वाले ने लिखा हो चाहे प्रेम को बिलकुल न जानने वाले ने लिखा हो, प्रेम प्रेम है। उसमें कोई न्यूएंस नहीं है, उसमें कोई ध्वनि तरंग नहीं है। वह मुर्दा है। तो जब जीसस कहेंगे 'प्रार्थना', तो उसका मतलब वह नहीं होता जो किताब में कोई भी लिख देता है। जीसस की पूरी जिन्दगी प्रार्थना है, वह सिर से अँगूठे तक प्रार्थना है, रोयाँ-रोयाँ प्रार्थना है। जब वह कहते हैं प्रार्थना तो इसका कुछ अर्थ ही और है, जो कि भाषा कोश में नहीं हो सकता। साथ ही जब भी किसी से बोला जा रहा है तब बहुत जल्दी एक टयूनिंग निर्मित हो जाती है। बहुत जल्दी आपका हृदय, सुनने वाले का हृदय निकट आ जाता है। द्वार खुल जाते हैं। आपके डिफेंस गिर जाते हैं। सुनते वक्त अगर आप ध्यान से सुन रहे हैं तो आपका सोचना बन्द हो ही जाता है : जितने ध्यान से सुन रहे हों उतना सोचना बन्द हो जाता है, द्वार खुल जाते हैं।

रिसेप्टीविटी साफ हो जाती है, ग्राहकता बढ़ जाती है, चीजें सीधे चली जाती हैं और एक दूसरे से हम परिचित हो जाते हैं। एक बहुत गहरे अर्थ में भीतर से सुर सम्बन्ध बन जाते हैं। बोलना ऊपर चलता है, भीतर के सुरसम्बन्ध भी यात्रा शुरू कर देते हैं। पढ़ते वक्त ऐसा कोई सुरसम्बन्ध नहीं बनता, क्योंकि बनेगा किससे ? पढ़ते वक्त आप समझते नहीं, समझना पड़ता है। सुनते वक्त आप समझते हैं, समझना पड़ता नहीं है। अगर मुझे पढ़ते हैं और अगर मैंने जैसा कहा है वैसा ही रिपोर्ट किया गया है, ठीक वैसा अक्षरशः, तो वह भूल जाते हैं कि पढ़ रहे हैं। थोड़ी देर में उनको लगता है कि वह सुन रहे हैं। पर जरा भी इधर-उधर या हेर-फेर किया गया तो धारा टूट जाती है। तो जिसने मुझे एक दफा सुन लिया है उसके लिए मेरा कहा गया और लिखा हुआ, जब वह पढ़ेगा, तो वह करीब-करीब पढ़ना न होगा, सुनना होगा। और भी फर्क हैं। माध्यम के फर्क बहुत हैं और कंटेंट बदलता है।

बड़ी कठिनाई तो यह हुई है कि जो हम कहने जा रहे हैं, वह जिस माध्यम से हम कहते हैं, वह उसके साथ बदलता है। जैसा मैं अनुभव करता हूँ, बदलेगा ही। अगर उसी बात को काव्य में कहना है तो काव्य अपनी ही व्यवस्था थोपेगा, तोड़-फोड़ करेगा, काट-छाँट करेगा। अगर उसी को गद्य में कहना है तो बात और होगी, कंटेंट बदल जायगा। इसलिए प्राथमिक रूप से सारे के सारे दुनिया के ग्रंथ काव्य में लिखे गये। उसका कारण है; जो कहा जा रहा था वह इतना तर्क अतीत था कि उसे गद्य में कहना कठिन पड़ा। गद्य बहुत लाजिकल है, पद्य बहुत इल-लाजीकल है। पद्य में इल-लाजिक को क्षमा किया जा सकता है, गद्य में क्षमा नहीं किया जा सकता। अगर आप कविता में थोड़ा सा बुद्धि के इधर-उधर सरकें तो माफ किया जा सकता है, लेकिन प्रोज में माफ नहीं किया जा सकता। क्योंकि प्रोज गहरे में लाजिक है और पोयट्री गहरे में इल-लाजिक है। अगर उपनिषद् को आप गद्य में लिखें, या गीता को गद्य में लिख दें, तो आप पायेंगे, उसका प्राण खो गया। यह मीडियम बदल गया। वही बात जो पद्य में बहुत प्रीतिकर लगती थी, गद्य में आकर खटकने लगेगी, क्योंकि वह तर्कहीन हो जायेगी। गद्य जो है वह तर्क की व्यवस्था है। उपनिषद् तो कहे गये पद्य में, गीता कही गयी पद्य में, लेकिन बुद्ध और महावीर पद्य में नहीं बोले, गद्य में बोले हैं। कारण था। युग बदल गया था पूरा। जब उपनिषद् और वेद रचे गये तब एक अर्थ में युग ही पद्यात्मक था। लोग सीधे-सादे थे, तर्क की उनकी माँग ही नहीं थी। उनसे किसी ने कह दिया कि ईश्वर है, तो उन्होंने कहा, है। फिर वह यह भी पूछने नहीं आते

कि कैसा है, क्या है ? अगर बच्चे को देखें तो आपको पता चल जायगा कि उस युग के लोग कैसे रहे होंगे । एक बच्चा आपसे कितना ही कठिन सवाल पूछे, लेकिन इतने ही सरल जवाब से राजी हो जाता है । सवाल कितना ही कठिन पूछे, सरल जवाब हो, राजी हो जाता है । वह पूछेगा, बच्चे कहाँ से आते हैं ? आप कहते हैं कौवा लाता है, वह चला गया खेलने । सवाल उसने भारी कठिन पूछा था, जिसका अभी बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी ठीक से जवाब नहीं दे पा सकता है । उसने अल्टीमेट पूछ लिया था, बच्चे कहाँ से आते हैं ? आपने कहा, कौवे ले आते हैं । इतने में गया । बड़े सरल जवाब से राजी हो गया है । ध्यान रखें, जवाब जितना पोइटिक होगा बच्चा उतनी जल्दी राजी हो जायगा । अगर इसको आप पोयटरी में कह देते कि कौवा ले आया तो वह और भी जल्दी राजी हो जाता । इसलिए छोटे बच्चों की किताब हमें पोयटरी में लिखनी पड़ती है । क्योंकि उसके हृदय में जल्दी से पहुँच जाती है । उसमें धुन होती है, लय होती है । वह उसके मन में जल्दी से उतर जाती है । अभी वह धुन और लय के जगत में जीता है । बुद्ध और महावीर को गद्य का उपयोग करना पड़ा । क्योंकि युग तार्किक था और लोग भारी तर्क कर रहे थे । लोग सवाल छोटा-सा पूछते, लेकिन बड़े-से-बड़े जवाब से राजी नहीं थे । हालत उल्टी हो गयी थी । बड़े-से-बड़ा जवाब भी उनको काफी नहीं था । क्योंकि २५ सवाल वे और पूछेंगे । इसलिए बुद्ध और महावीर को बिलकुल ही गद्य में बोलना पड़ा । और अब दुनिया में पद्य में कभी बोला जा सकेगा इसकी कठिनाई है । इसलिए पद्य अब ज्यादा-से-ज्यादा मनोरंजक है । इसमें कोई गहरी बातें नहीं कही जाती, जबकि दुनिया की प्राथमिक सभी बातें पद्यों में कही गयी हैं । कुछ लोग जिनको फुर्सत में कुछ मनोरंजन करना है, करते हैं । लेकिन जो भी कीमती बातें हैं वे गद्य में कही जायेंगी । क्योंकि अब आदमी बच्चे जैसा नहीं है, प्रौढ़ है । हर चीज पर तर्क करेगा । गद्य ही उस तक पहुँचेगा । हर माध्यम कंटेंट को बदलता है । पहुँचाने की सुविधा-सम्भावना को बढ़ाता घटाता है । और मेरी अपनी दृष्टि तो यह है कि जैसे जैसे टेक्नोलाजी विकसित होती रही है वैसे-वैसे बोलने का माध्यम वापस लौट आयगा । बीच में खोया था । क्योंकि किताब ने पकड़ लिया था चीजों को । टेक्नोलाजी हमें वापस लौटाये दे रही है । थ्री डायमेंशनल टेलिविजन हो जायगा । कोई किताब पढ़ने को राजी नहीं होगा । मैं सारी दुनिया से एक साथ बोल सकता हूँ, टेलिविजन पर । वह मुझे सीधा ही सुन सकते हैं । भविष्य किताब का बहुत अच्छा नहीं है । जल्दी ही, किताब पढ़ी नहीं जायेगी अब, देखी जायेगी एक अर्थ में । उसको देखने में ट्रांसफार्म करना पड़ेगा । माइक्रो फिल्म्स बन गयी हैं । जिनमें कि किताब को

परदे पर आप देखेंगे। बहुत जल्दी इसको हम पिक्चर में बदल देंगे। इसमें ज्यादा देर नहीं लगेगी।

मेरी अपनी समझ ऐसी है कि लिखने का माध्यम एक मजबूरी थी। कोई और उपाय नहीं था तो लिखा गया। फिर भी जिन्हें कुछ बहुत बड़ी बात कहनी थी वे अब तक भी बोलने के माध्यम का उपयोग किये हैं। तो मेरे मन में कभी ख्याल नहीं आता कुछ लिखने का। एक तो मेरी यह समझ में नहीं आता कि किसके लिए? और दूसरा जब तक मेरे सामने किसी का चेहरा न हो तब तक मेरे भीतर कुछ उठता नहीं। एक जो कहने का रस होता है, वह मेरे लिए कारण नहीं है। एक साहित्यकार में और एक ऋषि में यही फर्क है। साहित्यकार को कहने में रस है। कह पाया तो आनन्दित है। अभिव्यक्ति बड़ा आनन्द है। कह दिया तो जैसे कोई बोझ हल्का हो गया। मेरे ऊपर कोई बोझ नहीं है। जब मैं आपसे कुछ कह रहा हूँ तो मुझे कहने की वजह से कोई आनन्द नहीं आ रहा है। कह कर मेरा कोई बोझ हल्का नहीं हो रहा है। मेरा कहना बहुत गहरे में, एक्सप्रेशन कम और रिस्पांस ज्यादा है। मुझे कुछ कहना ही है आपसे, ऐसा नही है। आपको कुछ कहलवाना हो तो ही मेरे भीतर से कुछ आ सकता है। यानी करीब-करीब हालत मेरे मन के भीतर ऐसी है कि अगर आप बाल्टी डाल दें तो ही मेरे कुएँ से कुछ आ सकता है। इसलिए धीरे-धीरे आप देखते हैं, मुझे मुश्किल होता जा रहा है। जब तक मुझसे कुछ पूछा न जाय मुझे कहना मुश्किल होता जा रहा है। इसलिए बहुत कठिनाई है आगे कि मैं सीधा बोल पाऊँ। इसलिए अब मुझे बहाने खोजने पड़ेंगे। अगर गीता पर बोल रहा हूँ तो उसका कारण है। मुझे बहाना चाहिए। आप कोई बहाना खड़ा कर देंगे, तो मैं बोल दूँगा। आपने बहाना नहीं खड़ा किया तो मेरे लिए मुश्किल हो जाता है कि खूँटी नहीं है तो क्या टाँगना है और क्यों टाँगना है, वह भी पकड़ में नहीं आता। एकदम खाली बैठा रह जाता हूँ। अगर आप नहीं पूछ रहे हैं तो मैं खाली हूँ। आप कमरे के बाहर गये तो मैं खाली हूँ। परन्तु जिसको अभिव्यक्ति देनी है, जब आप कमरे से बाहर गये, तब वह तैयारी कर रहा है। उसके दिमाग में कुछ तैयार हो रहा है। जब वह भारी हो जायगा तब वह उसको प्रकट करेगा। मैं बिलकुल खाली हूँ। आप कुछ बुलवा लेंगे तो बोल दूँगा। आप कोई प्रश्न खड़ा कर देंगे तो कुछ बोल दूँगा। लिखना मुश्किल है। क्योंकि लिखना, वे जो भारी हैं, उनके लिए आसान है।

प्रश्न : आप अपनी आत्म-कथा क्यों नहीं लिखते ?

उत्तर : यह सवाल ठीक है कि मैं अपनी आत्म-कथा क्यों नहीं लिखता। यह बहुत मजेदार है। असल में आत्मा के जानने के बाद कोई आत्म-कथा नहीं

होती। और सब आत्म-कथाएँ अहंकार-कथाएँ हैं। आत्म-कथाएँ नहीं हैं, इगो-ग्राफीज हैं। पहला तो यह कि जिसे हम कहते हैं आत्म-कथा, वह आत्म-कथा नहीं है। क्योंकि जब तक आत्मा का पता नहीं है तब तक जो भी हम लिखते हैं वह इगो-ग्राफी है। वह अहम्-कथा है। इसलिए यह बड़े मजे की बात है कि जीजस ने आत्म कथा नहीं लिखी, कृष्ण ने नहीं लिखी, बुद्ध ने नहीं लिखी, महावीर ने नहीं लिखी। न लिखी, न कही है। आत्म-कथ्य जो है वह इस जगत में किसी भी उस आदमी ने नहीं लिखा जिसने आत्मा जानी है, क्योंकि आत्मा को जानने के बाद वह ऐसे निराकार में खो जाता है कि जिसे हम तथ्य कहते हैं वे सब उखड़ कर बह जाते हैं। जिनको हम खूँटियाँ कहते हैं—यह जन्म हुआ, यह यह हुआ, वह सब उखड़ कर बह जाते हैं। इतना बड़ा अंधड़ है आत्मा का आना, कि उस आँधी के बाद जब वह देखता है तो पाता है कि सब साफ ही हो गया। वहाँ कुछ बचा ही नहीं। फिर कथ्य तो बचता नहीं। इसका कोई मूल ही नहीं रह जाता। आत्मा को जानने के बाद आत्म-कथा करीब-करीब ऐसी हो जाती है जैसे कोई अपने सपने देखे। जैसे वह अपने सपनों का ब्योरा लिखे रोज सुबह कि आज मैंने यह सपना देखा, कल मैंने यह सपना देखा, परसों मैंने यह देखा। एक आदमी अगर अपने सपनों की कथा लिखे तो जितनी उसकी कीमत हो सकती है उससे ज्यादा कीमत उसकी नहीं है, जिसको हम यथार्थ कहते हैं। और 'जाग गया' आदमी लिख सकता है—यह कठिन है मामला। क्योंकि जागने से ही पता चलता है कि सपना था, लिखने योग्य भी कुछ नहीं बचता। अनुभव की बात रह जाती है; पर जो जाना है वह भी नहीं लिखा जा सकता। वह नहीं लिखा जा सकता, इसलिए, कि लिखते ही बहुत फीका और बेमानी हो जाता है। ये सब उसको ही कहने की कोशिश चलती है निरन्तर। बहुत-बहुत मार्गों से, बहुत-बहुत विधियों से। जिन्दगी भर उसी को कहता रहूँगा, वह जो हुआ है। उसके अलावा और कुछ कहने को है नहीं। लेकिन उसको भी लिखा नहीं जा सकता। क्योंकि जैसे ही लिखते हैं उसको, वैसे ही पता चलता है कि यह तो कोई बात नहीं हुई। क्या लिखेंगे? लिख सकते हैं कि आत्मा का अनुभव हुआ। बड़ा आनन्द मिला, कि बड़ी शान्ति मिली। सब बेमानी मालूम होता है। शब्द मालूम होते हैं। बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट पूरी जिन्दगी, जो उन्होंने जाना है, उसको बहुत रूपों में कहे चले जा रहे हैं। फिर भी थकते नहीं। क्योंकि रोज लगता है कि बाकी रह गया है। फिर उसको और तरह से कहते हैं। वह चुकता नहीं। बुद्ध, महावीर चुक जाते हैं, वह नहीं चुकता। वह कथा कहने को बाकी ही रह जाती है। दोहरी कठिनाई है। जो कहा जा सकता है वह सपने जैसा हो जाता है। जो नहीं कहा जा सकता है वह

कहने जैसा लगता है। फिर यह भी ख्याल निरन्तर होता है कि उसको सीधा कहने से कुछ भी हो तो प्रयोजन नहीं है। तुमसे मैं कह दूं मुझे यह हुआ, उससे कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन तो इससे है कि तुम्हें उस रास्ते पर ले चलूं जहाँ तुम्हें हो जाय, तो तुम शायद किसी दिन समझ सको कि क्या हुआ होगा। उसके पहले समझ भी नहीं सकते। सीधा यह वक्तव्य कि मुझे क्या हुआ, क्या मतलब रखता है ? तुम भरोसा करोगे, यह भी मैं नही मानता। तुम भरोसा भी नहीं कर सकोगे ? तो तुम्हें गैर भरोसे में डालने से क्या प्रयोजन ? नुकसान ही होगा। यही उचित है कि तुम्हें उस रास्ते पर, उस किनारे पर धक्का दिया जाय जहाँ कि तुम्हें किसी दिन हो जाय। उस दिन तुम भरोसा कर सकोगे। उस दिन तुम जान सकोगे कि ऐसा होता है। नहीं तो भरोसे का भी उपाय नही। जैसे बुद्ध की मृत्यु का वक्त है और लोग पूछ रहे है कि आप जब मर जायेंगे तो कहाँ जायेंगे ? तब बुद्ध क्या कहें ? वह कहते हैं, मैं कहीं था ही नही तो मर कर मैं कहाँ जाऊँगा ! मैं कभी कहीं गया ही नहीं, मैं कभी कहीं था ही नहीं ! तब भी पूछने वाले पूछ रहे हैं कि नही जरूर कुछ तो बताइये, कहाँ जायेंगे ? वे बिलकुल तथ्य कह रहे हैं। क्योंकि बुद्धत्व का मतलब ही है 'नो-ह्वेयरनेस' उस स्थिति में कोई, न कही होता, और न होने का कोई सवाल होता है। तुम भी अगर शान्त पड़ के किसी क्षण रह जाओ तो सिवाय साँस चलने के और क्या बचेगा ? सिर्फ साँस ही रह जायेगी और बचेगा क्या ? तो साँस वैसे ही रह जायेगी जैसे बबूले में हवा रहती है, और क्या रह जायेगी ? वह तो हम कभी ख्याल नहीं करते और हमें ख्याल में नहीं आता। क्योंकि हम कभी उस क्षण में नहीं होते। कभी दो क्षण को भी मौन होकर बैठ जाओ, तो तुम क्या पाओगे, कि तुममें है क्या सिवाय साँस के ? विचार नहीं है, तो सिवाय साँस के तुममे क्या बचेगा ? और तुममें साँस का बाहर-भीतर आना, एक बबूले में साँस का, एक बैलून में हवा के बाहर-भीतर आने से ज्यादा और क्या है ! तो बुद्ध कहते हैं, मैं एक बबूला था, था कहाँ ? इसलिए जाने का क्या सवाल है ? एक बबूला फूट गया, हम पूछते हैं कहाँ चला गया ? हम नहीं पूछते क्योंकि हम पहले से ही जानते हैं कि बबूला था ही कहाँ। हम नहीं पूछते कहाँ चला गया ? बस ठीक है, था ही नहीं तो जाने की क्या बात है। अब बुद्ध जैसा व्यक्ति अपने को जान रहा है कि बबूला है, तो क्या आत्म-कथा लिखे, क्या अनुभव की बात कहे ? और जो भी कहेगा वह मिसअंडरस्टैण्ड [illegible] है।

[illegible] एक [illegible] ने एक [illegible]

कि [illegible] कभी [illegible] नहीं [illegible]

उसने बुद्ध की मूर्ति की पूजा की है, अभी उसने कहा हटाओ इस आदमी की मूर्ति, यह सरासर झूठ है। तो किसी ने खड़े होकर कहा, आप क्या कह रहे हैं, आपका मस्तिष्क तो दुरुस्त है ? लिंची ने कहा, जब तक मैं सोचता था कि मैं हूँ, तब तक मैं मान सकता था कि बुद्ध हैं। लेकिन जब मैं ही नहीं हूँ, हवा का बबूला है, तो यह आदमी कभी हुआ नहीं। सांझ फिर पूजा कर रहा था वह बुद्ध की, तो लोगों ने कहा, यह क्या कर रहे हो ? तुम दोपहर तो कह रहे थे कि ये नहीं हुआ। उसने कहा, लेकिन इसके न होने से मुझे भी न होने में सहायता मिली, तो धन्यवाद दे रहा हूँ। लेकिन एक बबूले का एक बबूले को धन्यवाद है, इसमें और कुछ ज्यादा बात नहीं है। लेकिन ये वक्तव्य समझे नहीं जा सकते। लोगों ने समझा कि यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया है। यह तो बुद्ध के खिलाफ हो गया।

आत्म-कथ्य बचता नहीं। बहुत गहरे में समझो तो आत्मा भी बचती नहीं। आमतौर से यहाँ तक तो हम समझ पाते हैं कि अहंकार नहीं बचता, क्योंकि हमसे हजारों साल से यह कहा जा रहा है। और कोई वजह नहीं है। हजारों साल से कहा जा रहा है कि अहंकार नहीं बचता तो हम समझ लेते हैं, कि ज्ञान की स्थिति में अहंकार नहीं बचता। लेकिन अगर ठीक से समझना चाहें तो आत्मा भी नहीं बचती। पर यह समझने में बहुत घबराहट होती है। इसलिए तो बुद्ध को हम नहीं समझ पाये। उसने कहा कि आत्मा भी नहीं बचती, अनात्म हो जाते हैं। बहुत कठिन पड़ गया। इस पृथ्वी पर बुद्ध को समझना अब तक सर्वाधिक कठिन पड़ा। क्योंकि महावीर अहंकार तक की बात करते हैं, कि अहंकार नहीं बचता। वहाँ तक हम समझ सकते हैं। ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं है कि आत्मा भी नहीं बचती है। लेकिन वे हमारी समझ को ध्यान में रखे हुए हैं कि ठीक है, अहंकार तो छोड़ो, फिर आत्मा तो अपने से छूट जाती है। कोई अड़चन नहीं है उसको कहने की। लेकिन बुद्ध ने पहली दफा वह स्टेटमेंट दे दिया जो बहुत दिन तक सीक्रेट था, जो कहा नहीं गया था। उपनिषद् भी जानते हैं और महावीर भी जानते हैं कि आत्मा नहीं बचती है। क्योंकि आत्मा का ख्याल भी अहंकार का ही सूक्ष्म रूप है। लेकिन बुद्ध ने एक सीक्रेट, जो सदा से सीक्रेट था, कह दिया कि आत्मा नहीं बचती। मुश्किल पड़ गयी। वही लोग जो मानते थे कि अहंकार नहीं बचता, वही लड़ने खड़े हो गये। आप बुद्ध की अड़चन समझते हैं ? जो लोग मानते थे कि अहंकार नहीं बचता वे ही लड़ने खड़े हो गये कि आप यह क्या कह रहे हैं [illegible] है। जब हम ही नहीं बचते तो फिर [illegible] फिर कैसी आत्म-कथा होगी ? फिर कोई आत्म-कथा

नहीं हो सकती। सब सपने जैसा है, बबूले का देखा हुआ सपना है, बबूले पे बने हुए रंग-बिरंगे किरण के जाल हैं। बबूले के साथ सब खो जाते हैं ऐसा जब दिखायी पड़ता हो तो बड़ी कठिनाई होती है। ऐसी जब बिलकुल ही स्पष्ट स्थिति हो तो बहुत कठिनाई हो जाती है।

प्रश्न : इस स्थिति के पहले जिस प्रक्रिया या अनुभव से व्यक्ति गुजरता है उसका लिखा जाना उपयोगी है या नहीं ?

उत्तर : असल में साधकों के काम पड़ सकती है, लेकिन सिद्ध को लिखना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जो सिद्ध की कठिनाई है वह साधक की कठिनाई नहीं है। सिद्ध की कठिनाई ऐसी है कि इस कमरे में भूत नहीं है–है ही नहीं। तुम्हारे लिए है। इस कमरे में एक भूत है तुम्हारे लिए। जो जानता है उसके लिए भूत नहीं है, हालाँकि कभी उसको भी भूत था और उसने एक मन्त्र से उसको भगाया था, लेकिन अब वह जानता है कि भूत भी झूठा था और मन्त्र भी झूठा था। अब वह किस मुँह से कहे कि मैंने मन्त्र से भूत को भगाया। मेरा मतलब समझे ? उसकी तकलीफ तुम्हारे लिए कह रहा हूँ। यानी वह जानता है कि भूत तो झूठ था ही, वह कभी था ही नहीं, मन्त्र ने सिर्फ अँधेरे में भरोसा दिलाया। अब वह जानता है कि भूत भी झूठा था, भगाया जिस मन्त्र से वह मन्त्र भी झूठा था। अब वह किस मुँह से तुमसे कहे कि मैंने मन्त्र से भूत को भगाया। अब वह कहना बेमानी हो गया। हालाँकि तुम्हारे लिए भूत है और अगर वह कह सके कि मन्त्र से मैंने भगाया तो मन्त्र तुम्हारे लिए काम पड़ सकता है। इसलिए वह यह नहीं कहेगा कि मैंने मन्त्र से भूत को भगाया। वह तुमसे यही कहेगा कि भूत मन्त्र से भगाये जा सकते हैं। तुम मन्त्र का उपयोग करो, भूत भाग जाता है। लेकिन यह तुमसे वह नहीं कहेगा, मैंने मन्त्र से भूत को भगाया, क्योंकि वह फाल्स स्टेटमेंट है। अब वह जानता है कि मन्त्र उतना ही झूठा था जितना भूत झूठा था। इसलिए ऐसे व्यक्ति के वक्तव्य बहुत ही कम सेल्फ सेंटरिक होंगे। वह मुश्किल से ही कभी अपने बाबत बोलेगा वह सदा तुम्हारे लिए तुम्हारे बाबत, और तुम्हारी परिस्थिति के बाबत बोलता रहेगा। यही उसकी तकलीफ है या फिर उसको फाल्स स्टेटमेंट देना पड़े।

प्रश्न : तो साधना के प्रोसेस सब भूत है ?

उत्तर : सब भूत हैं ! क्योंकि आखिर में जो तुम पाओगे वह तुम्हें सदा से मिला ही हुआ है। आखिर में जिससे तुम छुटकारा पाओगे उससे तुम कभी बँधे ही नहीं हो। लेकिन यह भी कठिनाई है न। यही मैं कहता हूँ कि सिद्ध की कठि-

नाइयाँ हैं। अगर वह तुमसे यह कह दे कि साधना के सब उपाय झूठे हैं तो तुम्हें दिक्कत में डाल देगा। क्योंकि तब तुम्हारे लिए भूत तो सच्चा रहेगा और साधना के सब उपाय झूठे हो जायेंगे। भूत झूठा हो जाय, तो साधना के उपाय झूठे सार्थक हैं। मेरा मतलब समझे न? भूत तो झूठा नहीं होगा। यह बड़े मजे की बात है कि गलत-गलत कहने से गलत नहीं होता। लेकिन सही, गलत कहने से हम फौरन मान लेते हैं कि गलत है। कोई कितना ही कहे कि क्रोध गलत है, इससे क्रोध गलत नहीं होता। लेकिन कोई कहे कि ध्यान गलत है, तो फौरन गलत हो जाता है। एक सेकेण्ड नहीं लगता गलत होने में। कोई आदमी तुमसे कहे, फलाँ आदमी सन्त है, तुम नहीं मान लेते हो। तुमको एक आदमी कहे, फलाँ आदमी चोर है तो बिलकुल मान लेते हो। कोई आदमी कहे सन्त है, तो तुम पचास तरकीब से पता लगाओगे कि है कि नहीं। क्योंकि तुम्हें भी बेचैनी रहेगी उसके सन्त होने से। तुम्हारे अहंकार को चोट लगेगी। तुम कोई-न-कोई तरकीब निकाल के कर लोगे पक्का कि नहीं है, वह भी सन्त नहीं है। लेकिन कोई कह दे कि फलाँ आदमी चोर है—तुम बिलकुल पता लगाने नहीं जाते, तुम बिलकुल मान लेते हो कि चोर है। क्योंकि तुम्हें सुख मिलता है इस बात को मान लेने में कि हम अकेले ही चोर नहीं हैं, वह भी चोर है। निंदा इतनी जल्दी स्वीकृत होती है, प्रशंसा कभी स्वीकृत नहीं होती। और प्रशंसा जब तुम स्वीकार भी कर लेते हो, मजबूरी में, कोई उपाय नहीं देख के, तब भी वह टेंटेटिव होती है। तब भी वह सिर्फ मजबूरी होती है कि कभी मौका मिल जायगा तो सुधार कर लेंगे। निंदा एब्सलूट हो जाती है, फिर मौका भी तुम्हें मिल जाय सुधार करने का तो तुम नहीं करोगे। ठीक ऐसा ही जीवन में चलता है कि गलत अगर कोई कह दे गलत है, तो हम सुन लेते हैं। उससे वह गलत नहीं होता है। लेकिन ठीक को अगर कोई कह दे गलत है, तो हम फौरन मान लेते हैं, क्योंकि हम झंझट से बचेंगे। क्योंकि ठीक में कुछ करना पड़ता है। क्रोध हो जाता है, ध्यान करना पड़ता है। कोई कह दे क्रोध गलत है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह होता रहेगा। लेकिन ध्यान करना पड़ता है। कोई कह दे गलत—तो छूट जायगा।

प्रश्न : ध्यान को तो अवस्था बताया आपने, क्रिया नहीं?

उत्तर : यही तो दिक्कत है। यही मैं कह रहा हूँ कि सिद्ध की दिक्कत यही है कि वह अगर पूरी बात तुमसे कह दे, जैसा उसको अनुभव है, तो तुम भटक जाओगे सदा के लिए। क्योंकि वह तुम्हारा नहीं है मामला। जैसे कि मैंने कह दिया कि ध्यान अवस्था है। बिलकुल सच बात है यह, ध्यान अवस्था है। लेकिन

तुम्हारे लिए क्रिया ही होगी, तुम्हारे लिए अवस्था नहीं हो सकती। क्योंकि ध्यान अवस्था है, इससे तुम क्या करोगे। अब कुछ करने को नहीं बचा। अगर क्रिया है तो तुम कुछ करोगे और अवस्था है तो बात खत्म हो गयी। तुम निश्चित हो गये कि ठीक है। लेकिन क्रोध जारी रहेगा इसके मानने से कि ध्यान अवस्था है। क्रोध खत्म नहीं होगा। काम जारी रहेगा, लोभ जारी रहेगा। तकलीफ यह है कि अगर तुम्हें देखकर कहूँ तो मुझे कुछ-न-कुछ झूठ बोलना ही पड़ता है, और अगर अपने को देखकर कहूँ तो जो मैं बोलता हूँ वह बेकार है। बेकार ही नहीं, खतरनाक भी है, क्योंकि सुनने वाले तुम हो। तुम्हें गहरे में कुछ-न-कुछ उससे बाधा पड़ने वाली है। इसलिए अगर मैं ठीक वही कहूँ जो मुझे लगता है तो मैं तुम्हारे किसी फायदे में नहीं आ सकता, नुकसान पहुँचा सकता हूँ। जैसा कृष्णमूर्ति का, मैं मानता हूँ कि लोगों को नुकसान पहुँचता है। और जितना ज्यादा मैं देख रहा हूँ उतना मुझे लगता है कि नुकसान पहुँचता है। क्योंकि वह वही कह रहे हैं जो भीतर है। तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रश्न : मौन में बड़ी शक्ति है? मौन ही सब-कुछ है—फिर यह कोई क्यों कहता है?

उत्तर : मौन में तो बहुत शक्ति है, लेकिन मौन को सुनने वाला चाहिए न।

प्रश्न : सुनाने की जरूरत क्यों पड़ती है?

उत्तर : जरूरत इसलिए पड़ती है कि तुम्हें मैं देख रहा हूँ कि तुम गड्ढे में जा रहे हो। तुम्हें मैं देख रहा हूँ कि तुम गिरोगे गड्ढे में, तुम हाथ-पैर तोड़ोगे। मैं खड़ा हूँ, मैं मौन से कह सकता हूँ, लेकिन मौन से सुनने का तुम्हारे पास कान नही है। तो तुम्हें चिल्ला कर ही कहूँ कि गड्ढे में गिर जाओगे।

प्रश्न : उससे क्या शक्ति लूज होती है?

उत्तर : नहीं नहीं, कुछ लूज होती नहीं। जिसको शक्ति का पता चल गया उसका कुछ कभी नहीं खोता। जिसको पता नहीं चला है उसी का सब खोता रहता है। जो कठिनाई है वह यह है कि अगर मैं आत्म-कथा की तरह कुछ लिखूं तो वह या तो झूठ होगी या सच होगी। दो ही उपाय हैं। सच होगी तो तुम्हें नुकसान पहुँचायेगी, झूठ होगी तो मैं वैसा वक्तव्य नहीं देना चाहूँगा। वह पकड़ ही नहीं पायेगा। या तो बिलकुल सत्य होगी तो फिर तुम्हारे लिए नुकसान ही पहुँचाने वाली है, क्योंकि तुम जो कर रहे हो, वह सब उससे निकलेगा कि बेकार है। सब बेकार है। और तुम बड़ी जल्दी राजी हो जाओगे बेकार के लिए।

एक व्यक्ति आये। उन्होंने कहा कि कृष्णमूर्ति ने तो कहा कि मेडीटेशन बेकार है तो हमने छोड़ दिया। बहुत अच्छा किया तुमने। अब छोड़कर तुम्हें क्या मिला ? छोड़कर कुछ नहीं मिला। उसे पकड़ा तुमने किस लिए था ? पकड़ा इसलिए था कि क्रोध चला जाय, अज्ञान चला जाय। छोड़ने से चला गया ? वह नहीं गया। तुमने कैसे छोड़ दिया ? कृष्णमूर्ति ने कहा इसलिए छोड़ दिया कि बेकार है मेडीटेशन। जब बेकार है, जब इतना ज्ञानी आदमी कहता हो तो हम काहे के लिए झंझट में पड़ें। यही बड़ी मुश्किल की बात है न। मैं भी जानता हूँ कि बेकार है। किसी क्षण में किसी से कहता भी हूँ कि बेकार है; लेकिन उसी से कहूँगा जो बहुत कर चुका है और अब बेकार होने को समझ सकता है। जब उस जगह पहुँच गया जहाँ मेडीटेशन भी छूटनी चाहिए; लेकिन बाजार में कहने का कि मेडीटेशन बेकार है, खतरा है बहुत। अभी उसने तो मेडीटेशन की नहीं। जो नासमझ सुन रहे हैं उन्होंने भी कभी की नहीं। उनसे तुम कह रहे हो, बेकार है ? वह कभी करेंगे ही नहीं अब। उनको तो बहुत राहत मिल गयी है कि बिना ही किये सब हो गया मामला खत्म। तो चालीस साल से लोग कृष्णमूर्ति को सुन रहे हैं और नासमझ की तरह बैठे हुए हैं क्योंकि वह कहते हैं, बेकार है। कोई गलत नहीं कह रहे हैं। सारी जिन्दगी वह वही कह रहे हैं, वह गलत जरा भी नहीं कह रहे हैं। फिर भी गलत कह रहे हैं क्योंकि तुम्हारे ऊपर कोई दृष्टि नहीं है। अपनी कहे चले जा रहे हैं। इसलिए मैं निरन्तर इस कोशिश में रहता हूँ कि अपने को बचाऊँ, अपनी कहूँ ही नहीं कुछ। क्योंकि अगर मैं अपनी कहूँगा और ठीक-ठीक कहूँगा, तो तुम्हारे किसी भी काम का नहीं होगा। लेकिन कितना मजा है कि मैं तुम्हारी कहूँ, तुम्हारी फिक्र से कहूँ तो भी तुम मुझसे कहने आओगे कि आपने ऐसा कह दिया। इसमें यह विरोध आ गया। मैं बिलकुल अविरोध की बात कह सकता हूँ, लेकिन तब तुम्हारे किसी काम की नहीं होगी। हाँ, इतनी काम की होगी कि तुम जहाँ हो वहीं ठहर जाओगे। तो सिद्ध की कठिनाई है कि वह जो जानता है वह कह नहीं सकता। इसलिए जो पुरानी व्यवस्था थी एक लिहाज से उचित थी, गहरी थी। तुम्हारी स्थिति के अनुसार बातें कही जाती थीं। सब बातें टेंटेटिव थीं, कोई बात अल्टीमेट नहीं थी। तुम जैसे-जैसे बढ़ते जाओगे वैसे-वैसे हम खिसकाते जायेंगे। तुम्हारी जितनी गति होगी हम पीछे हटाते जायेंगे। हम कहेंगे, अब यह बेकार हो गया, अब इसको छोड़ दो। जिस दिन तुम उस स्थिति में पहुँच जाओगे जब हम कह सकेंगे, परमात्मा बेकार है, आत्मा बेकार है, ध्यान बेकार है, उस दिन कह देंगे। लेकिन यह उसी वक्त कहा जा सकता है जब कि इसके बेकार होने से कुछ भी बेकार नहीं होता। तब तुम हँसते हो, और जानते हो। अगर मैं कहूँ

कि ध्यान बेकार है और तुम ध्यान करते चले जाओ तो मैं मानता हूँ कि तुम पात्र थे। तुमसे कहा तो ठीक कहा। अगर मैं कहूँ कि संन्यास बेकार है और तुम संन्यास ले लो, तो मैं जानता हूँ कि तुम पात्र थे और तुमसे ठीक कहा। अब यह जो कठिनाई है, ये कठिनाइयाँ हैं, ये ख्याल में आयेंगी धीरे-धीरे।

●

दो

●

भेंट-वार्ता

७-२-'७१

प्रश्न : आपने कहा कि यदि शरीर की बात करोगे तो मैं कहूँगा मरणधर्मा है और आत्मा की बात करोगे तो मैं कहूँगा, तुम कभी जन्मे ही नहीं। फिर जब बुद्ध कहते हैं कि बस एक बबूला था, जो मिट गया—'मैं था ही नहीं तो जाऊँगा कहाँ ?' तो फिर चिन्मय कौन ? और अजन्मा क्या ?

उत्तर : एक तो सागर है, लहरें आती हैं और चली जाती हैं। और सागर बना रहता है। लहरें सागर से जरा भी अलग नहीं हैं, फिर भी लहरें सागर नहीं हैं। लहरें सिर्फ सागर में उठे रूप हैं, आकार हैं, जो बनेंगे, मिटेंगे। जो लहर बनी ही रहे, उसे लहर कहना बेकार है। लहर का मतलब यह है कि आयी भी नहीं और गयी। लहर शब्द का भी मतलब यही है, उठी भी नहीं कि जा चुकी। जिसमें उठती है, वह सदा है; जो उठती है वह सदा नहीं है। यह सदा की छाती पर परिवर्तनशील का नृत्य है। सागर तो अजन्मा है, लहर का जन्म होता है। सागर की कोई मृत्यु नहीं है। लहर की मृत्यु होती है। लहर भी जिस दिन यह जान ले कि मैं सागर हूँ तो जन्मने और मरने के बाहर हो गयी। जब तक लहर समझती है, मैं लहर हूँ, तभी तक जन्मने और मरने के भीतर है।

जो भी है, वह अजन्मा है, उसकी कोई मृत्यु नहीं। क्योंकि जन्म होगा कहाँ से ? शून्य से कुछ पैदा नहीं होता। मृत्यु होगी कहाँ ? शून्य में कुछ खोता नहीं। जो भी है,—यानी अस्तित्व, वह तो सदा है। समय कुछ भी अन्तर नहीं कर पाता उसमें। काल से कोई रेखा नहीं पड़ती। यही अस्तित्व हमारी पकड़ में नहीं आता। क्योंकि हमारी इन्द्रियों की पकड़ में सिर्फ रूप आता है, आकार आता है। नाम-रूप के अतिरिक्त हमारी इन्द्रियाँ कुछ भी पकड़ नहीं पातीं : यह बहुत मजे की बात है कि सागर के किनारे आप सैकड़ों बार खड़े हुए होंगे और

अनेक बार कहा होगा कि मैं सागर देखकर लौटा हूँ। लेकिन देखी आपने सिर्फ लहरें हैं, सागर आपने कभी देखा नहीं। सागर कभी दिखायी पड़ सकता नहीं। आप जो भी देखेंगे वह लहर है। इन्द्रियाँ, सिर्फ ऊपर जो हैं, उसे पकड़ पाती हैं, भीतर जो है वह छूट जाता है। ऊपर भी आकार भर को पकड़ पाती हैं, आकार के भीतर जो निराकार है, वह छूट जाता है। तो नाम-रूप का जो जगत है वह इन्द्रियों के देखने की वजह से पैदा हुआ है। वह कहीं है नहीं। जो भी नाम-रूप में है वह सब जन्मा है और मरेगा। जो उसके पार है वह सदा है—न वह जन्मा है, न वह मरेगा। तो जब बुद्ध कहते हैं कि बबूले की भाँति मैं उठा तो वे दो बातें कह रहे हैं। सच पूछा जाय तो बबूले में होता क्या है? अगर बबूले में हम प्रवेश करें तो हवा का थोड़ा-सा आयतन बबूले के भीतर होता है, उसी हवा का, जो बबूले के बाहर है, जो अनन्त होकर फैली है। इस बिराट हवा के, और बबूले के भीतर की हवा के बीच पानी की एक पतली-सी दीवाल होती है। जिसको दीवाल कहना भी ठीक नहीं है, सिर्फ पानी की पतली फिल्म है। वह पानी की जरा-सी पतली फिल्म, हवा के एक छोटे से हिस्से को कैद कर लेती है। और वही हवा का छोटा-सा हिस्सा कैद होकर बबूला बन जाता है। स्वभावतः सब चीजें बड़ी होती हैं, बबूला भी बड़ा होता है; और बड़ा होने पर टूटता है और फूट जाता है। बबूले की हवा बाहर की हवा से मिल जाती है, फिर पानी-पानी में मिल जाता है। बीच में जो निर्मित हुआ था वह इन्द्रधनुषी अस्तित्व था। ..... 'रेनबो एक्जीस्टेंस'। कहीं कुछ अन्तर नहीं पड़ा था शाश्वत प्राणों में, सब वैसे का वैसा था। लेकिन एक रूप निर्मित हुआ, वह रूप जन्मा और मरा।

हम भी अपने को बबूले की तरह देखें, तो रूप का बनना और मिटना है। भीतर जो है, वह सदा से है। लेकिन हमारी आइडेंटिटी, हमारा तादात्म्य होता है बबूले से। इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर आपके शरीर को देख कर कहूँ तो कहूँगा कि आप मरणधर्मा हैं, मर ही रहे हैं। जन्मे उसी दिन से मर रहे हैं। मरने के सिवाय आपने कोई काम ही नहीं किया है। बबूले को फूटने में सात क्षण लगते होंगे, आपको फूटने में सत्तर वर्ष लगेंगे। समय की अनन्त धारा में सात क्षण और सत्तर वर्ष में कोई भी फर्क नहीं है। सब फर्क हमारी छोटी आँखों के फर्क हैं। अगर समय अनन्त है, न उसका कोई प्रारम्भ है, न अन्त है, तो सत्तर साल और सात क्षण में कौन-सा फर्क होगा? हाँ, समय अगर सीमित हो, सौ ही साल का हो, तो फिर सत्तर साल में और सात क्षण में फर्क होगा। सात क्षण बहुत छोटे होंगे, सत्तर साल बहुत बड़े होंगे। लेकिन अगर दोनों तरफ कोई सीमा नहीं है, न इस तरफ कोई प्रारम्भ है, न उस तरफ कोई अन्त है, तो सात क्षण में और सत्तर

साल में क्या फर्क है ? हमें फिर भी भ्रम हो सकता है कि सात साल में और सत्तर साल में फर्क है। लेकिन अगर हम समय की पूरी धारा को देखें तो क्या फर्क है ? कितनी देर में फूट जाता है बबूला, यह बड़ा सवाल नहीं है। बनता है तभी से फूटना शुरू हो जाता है। इसलिए मैंने, शरीर को मरणधर्मा कहा। शरीर से मेरा मतलब है नाम-रूप से निर्मित जो दिखायी पड़ रहा है। और आत्मा से मेरा मतलब है, नाम-रूप के गिर जाने पर भी जो होगा। नाम-रूप नहीं थे तब भी जो था। आत्मा से मेरा मतलब है सागर और शरीर से मेरा मतलब है लहर। और ये दोनों ही बातें एक साथ समझनी जरूरी हैं। इन दोनों के बीच अगर भ्रम पैदा हो तो जगत की सारी कठिनाइयाँ खड़ी हो जाती हैं।

भीतर हमारे वह है जो कभी मर नहीं सकता इसलिए गहरे में हमें सदा ही ऐसा लगता है, मैं कभी न मरूँगा। लाखों लोगों को हम मरते हुए देखते हैं, फिर भी भीतर प्रतीति नहीं होती कि मैं मरूँगा। इसकी गहरे में कहीं कोई ध्वनि पैदा नहीं होती कि मैं मरूँगा। सामने ही लोग मरते रहे हैं और फिर भी हमारे भीतर 'न मरने का' भाव कहीं सजग होता है। किसी गहरे पल में, 'मैं नहीं मरूँगा' यह बात हमें जाहिर ही होती है। माना कि बाहर के तथ्य झुठलाते हैं, और बाहर की घटनाएँ कहती हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है, कि मैं न मरूँगा ? तर्क कहते हैं कि जब सब मरेगा तो तुम भी मरोगे। लेकिन सारे तर्कों को काटकर भी भीतर कोई स्वर कहे ही चला जाता है कि मैं नहीं मरूँगा। इसलिए जगत में आदमी कभी भरोसा नहीं करता कि वह मरेगा। इसीलिए तो हम इतनी मृत्यु के बीच जी पाते हैं, नहीं तो इतनी मृत्यु के बीच तत्काल मर जायँ। जहाँ सब मर रहा है, जहाँ प्रतिपल हर चीज मर रही है वहाँ हम किस भरोसे जीते हैं ? आस्था क्या है जीने की ? ट्रस्ट कहाँ है जीने का ? किसी परमात्मा में नहीं है। आस्था इस आधार पर खड़ी है भीतर, कि हम कितनी ही कहें मृत्यु कितना ही कहे कि मरते हैं, भीतर कोई कहे ही चला जाता है कि मर कैसे सकते हैं ! कोई आदमी अपनी मृत्यु को कंसीव नहीं करता। इसकी धारणा नहीं बना सकता कि मैं मरूँगा। कैसी ही धारणा बनाये, वह पायेगा कि वह तो बचा हुआ है। अगर वह अपने को मरा हुआ भी कल्पना करे और, देखे, तो भी पायेगा कि 'मैं देखता हूँ।' मैं बाहर खड़ा हूँ। मृत्यु के भीतर हम अपने को कभी नहीं रख पाते, सदा ही बाहर खड़े हो जाते हैं। मृत्यु के भीतर कल्पना में भी रखना असम्भव है। सत्य में रखना तो बहुत मुश्किल है, हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं ऐसी जिसमें कि मैं मर गया। क्योंकि उस कल्पना में भी मैं बाहर खड़ा देखता रहूँगा। कल्पना करने वाला बाहर ही रह जायगा, वह मर नहीं पायेगा। यह जो भीतर का स्वर है वह सागर

का स्वर है, जो कह रहा है मौत कहाँ ? मौत कभी जानी नहीं । लेकिन फिर भी हम मौत से डरते हैं,—यह हमारे शरीर का स्वर है । और इन दोनों के बीच कन्फ्यूजन है । भीतर स्वर को हम शरीर का स्वर जिस दिन समझ लेते हैं, उसी दिन प्राण कँपने लगते हैं, क्योंकि शरीर तो मरेगा । इसे हम कितना ही झुठलायें, कितना ही विज्ञान खड़ा करें, कितने ही चिकित्सा के शास्त्र बनायें, कितनी ही दवाइयों को घेरकर बैठ जायें और कितने ही चिकित्सकों को चारों तरफ खड़ा कर लें, फिर भी शरीर एक क्षण को नहीं कहता कि मैं बचूँगा। शरीर के पास कोई स्वर नहीं है अमृत का । वह जानता है कि मैं मर चुका ।

शरीर जानता है, वह बबूला है; और हम जानते हैं कि हम बबूले नहीं हैं । जिस दिन हम समझते हैं कि हम बबूले हैं, हमारे जीवन का सारा उपद्रव शुरू हो जाता है । वह जो शाश्वत है हमारे भीतर, जैसे ही लहर के साथ तादात्म्य कर लेता है वैसे ही कठिनाई में पड़ जाता है । इस तादात्म्य का नाम अज्ञान है । इस तादात्म्य के टूट जाने का नाम ज्ञान है । कुछ फर्क नहीं होता, सब चीजें फिर भी वैसी ही होती हैं । शरीर अपनी जगह होता है, आत्मा अपनी जगह होती है । एक भ्रांति टूट गयी होती है । तब हम जानते हैं, शरीर मरेगा, इससे हम भयभीत नहीं होते । क्योंकि इससे भयभीत होने का उपाय नहीं है । शरीर मरेगा ही । भयभीत होने का वहाँ उपाय है जहाँ बचने की सम्भावना है । आप ऐसी स्थिति में कभी भयभीत नहीं होते, जहाँ बचने की सम्भावना ही नहीं होती । बचने की सम्भावना से ही भय है । युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है तो घर से जाता है तब तक डरा रहता है । युद्ध के मैदान पर भी कँपा रहता है, लेकिन जब बचाव का सब उपाय समाप्त हो जाता है और बम उसके ऊपर ही गिरने लगते हैं तब वह निर्भय हो जाता है । तब वह आदमी, जो कि जरा-सी गोली चल जाती तो घबड़ा जाता, वह बमों के बीच, गोलियों के बीच बैठकर ताश भी खेलता है । वह बिलकुल साधारण आदमी है, कुछ विशेष आदमी नहीं है । स्थिति विशेष है । स्थिति ऐसी है जिसमें अब मौत से डरने का कोई अर्थ नहीं है—मीनिंगलेस है । मौत इतनी प्रकट है कि अब बचने का कोई सवाल नहीं है ।

युद्ध के मैदान पर भी कभी बचने की सम्भावना है क्योंकि कोई मरता है, कोई बचता है तो इसमें थोड़ा भय सरकता है । लेकिन मृत्यु के मैदान पर तो बचने की कोई सम्भावना नहीं, कोई भी नहीं बचता । इसलिए अगर यह भ्रांति मेरी टूट जाय, कि मैं शरीर हूँ तो उसी के साथ मृत्यु का भय चला जाता है । क्योंकि शरीर मरेगा, यह एक सुनिश्चितता हो जाती है, यह [illegible] है, इसका उपाय नहीं । यह नियम है शरीर का, इसमें रत्ती भर हेर-फेर नहीं । एक तरफ

यह स्पष्ट हो जाय कि शरीर मरेगा ही, मृत्यु शरीर का स्वभाव है। वैसे दूसरी तरफ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह जो शरीर के पार है, वह कभी जन्मा ही नहीं, इसलिए मरने का कोई सवाल नहीं। वहाँ से भी भय तिरोहित हो जाता है। क्योंकि जो नहीं मरेगा, उसके लिए भय का क्या कारण है और वह जो मरेगा ही उसके लिए भी भय का कोई कारण नहीं। भय इन दोनों के मेल से पैदा होता है। भय इससे पैदा होता है कि भीतार कोई कहता है कि बचूंगा और बाहर कोई कहता है कि कैसे बचोगे? और ये दोनों चीजें मिश्रित हो जाती हैं। ये दो स्वर अलग अलग वीणाओं से उठ रहे हैं, यह पता नहीं चलता। ये स्वर एक दूसरे में खो जाते हैं और हम इसे एक ही संगीत समझ लेते हैं। वही भूल हो जाती है।

अज्ञान में निरन्तर भय है मृत्यु का, फिर भी ऐसे जिये जाने की चेष्टा है जैसे मौत नहीं है। अज्ञानी जीता ऐसे ही है जैसे मौत नहीं है, यद्यपि प्रतिपल डरा हुआ जीता है कि मौत है। ज्ञानी ऐसे जीता है जैसे मौत नहीं है। पर प्रतिपल जानकर जीता है कि किसी भी क्षण मौत हो सकती है, पर मौत नहीं है। ये तल का फासला हो गया है—दो तलों पर अस्तित्व टूट गया। परिधि अलग हो गयी, केन्द्र अलग हो गया। लहर अलग हो गयी, सागर अलग हो गया। रूप अलग हो गया, अरूप अलग हो गया। फिर ऐसा नहीं कि वह मौत से भाग जाता है। यह भी एक बहुत अद्भुत बात है कि जीवन की जो भ्रांतियाँ हैं वह हमारे जानने से मिटने वाली भ्रांतियाँ नहीं हैं। जानने से सिर्फ हमारी पीड़ा मिटती है। जैसे शंकर ने निरन्तर उदाहरण दिया है कि राह में पड़ी है रस्सी और अँधेरे में दिखायी पड़ जाता है कि साँप है। लेकिन वह उदाहरण बहुत ठीक नहीं है। क्योंकि पास आ जाने से पता चल जाता है कि यह रस्सी है। जब एक दफा पता चल जाय फिर आप कितनी ही दूर चले जायें, आपको साँप दिखायी नहीं पड सकता। लेकिन जीवन का भ्रम इस तरह का नहीं है।

जीवन का भ्रम ऐसे है, जैसे आप सीधी लकड़ी को पानी में डाल दें, वह तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। बाहर निकाल के देख लें उसे कि सीधी है, फिर पानी में डाल दें, वह फिर तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। हाथ डालकर पानी में टटोलें, पायेंगे कि सीधी है, लेकिन फिर भी तिरछी दिखायी पड़ती है। आपके ज्ञान से उसके तिरछे होने का रूप नहीं मिटता। लेकिन तिरछी है, इसका भ्रम मिट जाता है। तो जीवन का जो हमारा भ्रम है यह साँप और रस्सी वाला भ्रम नहीं है, यह पानी में डाली हुई सीधी लकड़ी का तिरछी दिखायी देने का भ्रम है। [illegible] जानते हैं कि लकड़ी तिरछी नहीं है, फिर भी तिरछी दिखायी पड़ [illegible] तरह [illegible] कर चुका है कि पानी में

जाने से लकड़ी तिरछी नहीं होती है, पर उसको भी तिरछी दिखायी पड़ती है। वह तिरछी दिखायी पड़ना इंद्रियगत है। ज्ञान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। फर्क यह होगा कि आप तिरछा मानकर व्यवहार नहीं करेंगे, अब आप मानकर चलेंगे कि लकड़ी सीधी है, पर दिखायी यों पड़ती है कि लकड़ी तिरछी है। यह दो तल पर बँट जायेंगी बातें—जानने के तल पर लकड़ी सीधी होगी, देखने के तल पर लकड़ी तिरछी होगी। इन दोनों में कोई भ्रांति नहीं रह जायेगी।

जीने के तल पर शरीर होगा, बाहर के तल पर शरीर होगा, अस्तित्व के तल पर आत्मा होगी। खो नहीं जायगा कुछ। ऐसा नहीं कि ज्ञानी को संसार खो जाता है, ज्ञानी को संसार नहीं खो जाता। ज्ञानी को संसार ठीक वैसा ही होता है जैसा आपको होता है। शायद और भी प्रगाढ़, साफ और स्पष्ट होता है। रोयाँ-रोयाँ अस्तित्व का साफ उसकी दृष्टि में होता है। खो नहीं जाता, लेकिन अब वह भ्रम में नहीं पड़ता। अब वह जानता है कि रूप उसकी इंद्रियों से पैदा हुए हैं, जैसे लकड़ी पानी के भीतर तिरछी दिखायी पड़ती है। क्योंकि किरणों का रूपान्तरण हो जाता है। पानी में किरणों की यात्रा बदल जाती है। किरणें थोड़ी झुक जाती हैं, उनकी झुकाव की वजह से लड़की तिरछी दिखायी पड़ती है। हवा में किरणें एक तरह से चलती हैं, झुकती नहीं हैं, इसलिए लकड़ी तिरछी नहीं दिखायी पड़ती। लकड़ी तिरछी नहीं होती, जिस किरण के आधार पर दिखायी पड़ती है, वह तिरछी हो जाती हैं, इसलिए लकड़ी तिरछी दिखायी पड़ती है। अस्तित्व तो जैसा है वैसा है, लेकिन इंद्रियों से गुजर के, जो ज्ञान की किरण है वह थोड़ी तिरछी हो जाती है। जानने का जो ढंग है, वह बदल जाता है, माध्यम की वजह से। जैसे कि मैंने एक नीला चश्मा लगा लिया, अब चीजें नीली दिखायी पड़ने लगेंगी। मैं चश्मा उतार कर देखता हूँ, चीजें सफेद हैं। फिर चश्मा लगाता हूँ, वह फिर नीली दिखायी पड़ती हैं, पर अब मैं जानता हूँ कि चीजें सफेद हैं। सिर्फ चश्मे से नीली दिखायी पड़ती हैं। अब मैं भ्रम में पड़ने वाला नहीं हूँ। अब मैं चश्मा नीला लगाये रहूँ, चीजें नीली दिखायी पड़ती रहेंगी, और मैं जानूंगा भलीभाँति कि चीजें सफेद हैं। ठीक ऐसे ही आत्मा अमृत है, ऐसा जानकर भी शरीर का मरणधर्मा होना चलता रहता है। अस्तित्व सनातन है, ऐसा जानकर भी लहरों का खेल चलता रहता है। लेकिन अब मैं जानता हूँ कि वह चश्मे से दिखायी पड़ता है। वह आँख है इन्द्रिय की, पर ऐसा है नहीं।

इसलिए बुद्ध, महावीर या क्राइस्ट जैसे लोगों के वक्तव्य दो तलों पर हैं। हमारी कठिनाई यह है कि हम चूंकि दोनों तलों को अपने भीतर भी सम्मिश्रित कर लेते हैं, हम उनके वक्तव्यों को भी सम्मिश्रित कर लेते हैं—स्वभावतः। कभी

बुद्ध इस तरह बोल रहे हैं कि जैसे वह शरीर हैं। वे कहते हैं आनन्द मुझे प्यास लगी है, तू पानी ले आ। आत्मा को कोई प्यास नहीं लगती है। प्यास शरीर को लगती है। अब आनन्द सोच सकता है कि बुद्ध कहते हैं कि शरीर तो है ही नहीं नाम-रूप है, बबूला है। फिर उनको कैसे प्यास लगी ? अब जान लिया आपने कि शरीर है नहीं, तो अब कैसी प्यास ! फिर बुद्ध दूसरे दिन जब कहते हैं कि 'मैं तो कभी पैदा हुआ नहीं, मैं कभी मरूँगा नहीं !' तब सुनने वाले की कठिनाई शुरू होती है। सुनने वाले की कठिनाई यह है कि वह सोचता है कि ज्ञान में अस्तित्व बदल जायगा। ज्ञान में अस्तित्व नहीं बदलता, सिर्फ दृष्टि बदलती है। और जब बुद्ध कह रहे हैं कि आनन्द मुझे प्यास लगी है, तब भी वह यह कह रहे हैं कि आनन्द, इस शरीर को प्यास लगी है। तब भी वह यही कह रहे हैं कि यह जो नाम-रूप का बबूला है, इसे प्यास लगी है, अगर नहीं पानी डालेगा तो यह जल्दी फूट जायगा। वह इतना ही कह रहे हैं। लेकिन सुनने वाले की कठिनाई यह है कि जिस तरह वह अपने अस्तित्व को मिला-जुला कर जी रहा है दोनों बातों से, और कभी नहीं समझ पाता कि कौन स्वर कहाँ है, वैसे ही वह अर्थ भी वैसे ही निकालना शुरू करता है। इसलिए मैंने ऐसा कहा।

सीमॉनवेल ने एक किताब लिखी है 'ग्रेड्स ऑफ सिगनीफिकेंस—'महत्ता के तल'। जितना महान् व्यक्ति होता है उतना ही अनेक महत्ताओं के तलों पर वह एक साथ जीता है। जीना ही पड़ता है। क्योंकि जब जिस तल का व्यक्ति उसके सामने आता है, उसी तल पर उसे बात करनी पड़ती है। नहीं तो बात बेमानी हो जाती है। बुद्ध, अगर बुद्ध की तरह आपसे बातें करें, तो बेकार होगा। आप समझेंगे पागल है। ऐसा अक्सर हुआ है कि इस तरह के लोगों को हमने पागल समझा है। पागल समझने का कारण था। क्योंकि जो बात उन्होंने की, वह बिलकुल पागलपन की मालूम पड़ी। या तो वह पागल ठहराये जायेंगे अगर अपने तल पर बोलें, और यदि आपके तल पर बोलें तो उनको ग्रेड नीचे लाना पड़ेगा। उस तल पर आना पड़ेगा उन्हें, जहाँ आप समझ पायें। वहाँ वह पागल नहीं मालूम पड़ेंगे। फिर जितने तलों के लोग उनके पास आते हैं उतने तलों की बात उनको कहनी पड़ेगी। करीब-करीब बात ऐसी है कि बुद्ध जैसे व्यक्ति ने जितने लोगों से बात कही, ऐसा समझ लेना चाहिए कि उतने दर्पण बुद्ध के सामने आये। और सब दर्पणों ने अपनी-अपनी तस्वीर बना ली। कोई दर्पण तिरछा था तो तिरछी तस्वीर बनी। क्योंकि दर्पणों से मेल खानी चाहिए तस्वीर। कोई दर्पण लम्बा करके दिखाता था तो लम्बी तस्वीर बनी, कोई छोटा करके दिखाता था तो छोटी तस्वीर बनी। अन्यथा दर्पण नाराज होते या फिर दर्पणों को तोड़ना पड़ता और ठीक

करना पड़ता। इसलिए बहुत तलों पर वक्तव्य मिलेंगे। कई बार तो एक ही वक्तव्य में बहुत तल हो जाते हैं। क्योंकि ऐसा व्यक्ति बोलना शुरू करता है तब वह अक्सर वहीं से शुरू करता है जहाँ वह होता है। और जब वह बोलना बन्द करता है तो अक्सर वहीं होता है जहाँ आप होते हैं। कई दफा तो एक ही वाक्य में लम्बी यात्रा हो जाती है। क्योंकि जब वह बोलना शुरू करता है तो वहीं से शुरू करता है जहाँ वह स्वयं होता है। आपसे बड़ी अपेक्षाएँ रखकर शुरू करता है। फिर धीरे-धीरे अपेक्षा उसे नीचे उतारनी पड़ती है। आखिरी वक्तव्य पर वह वहाँ होता है जहाँ आप होते हैं। और ये दो गहरे विभाजन हैं। इसका यह मतलब नहीं कि दोनों बहुत अलग हैं, कि भिन्न हैं, कि पृथक् हैं। जैसा मैंने कहा, सागर और लहर जैसा है। यह और मजे की बात है कि सागर तो बिना लहर के कभी हो सकता है, लेकिन लहर कभी बिना सागर के नहीं हो सकती। निराकार तो आकार के बिना हो सकता है, लेकिन आकार कभी निराकार के बिना नहीं हो सकता। लेकिन हम अपनी भाषा में देखें तो उल्टा मजा है। भाषा में निराकार शब्द में आकार है, आकार शब्द में निराकार नहीं है। भाषा में निराकार में आकार को होना ही पड़ेगा, आकार में निराकार न हो तो चल जायगा। भाषा हमने बनायी है। पर अस्तित्व की हालत उल्टी है। वहाँ निराकार हो सकता है बिना आकार के। आकार कभी बिना निराकार के नहीं हो सकता है। पूरे शब्द हमारे ऐसे है—अहिंसा हो कि हिंसा हो। अहिंसा शब्द में हिंसा जरूरी है। हिंसा शब्द में अहिंसा आवश्यक नहीं है। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि हिंसा, बिना अहिंसा के नहीं हो सकती। हिंसा के होने के लिए अहिंसा बिलकुल ही अनिवार्य तत्व है। नहीं तो हिंसा का अस्तित्व नहीं हो सकता। हालाँकि अहिंसा, बिना हिंसा के हो सकती है। भाषा हम बनाते है और हम अपने हिसाब से बनाते है। हमारे लिए संसार हो सकता है बिना परमात्मा के, परमात्मा कैसे बिना संसार के हो सकता है ?

ये दो चीजे अलग नहीं है। इसलिए इसमे जो विराट् है वह क्षुद्र के बिना हो सकता है। लहर के बिना, सागर के होने मे कोई भी बाधा नहीं, लेकिन लहर कैसे होगी सागर के बिना ? लहर इतनी छोटी है—और अपने होने के लिए चारों तरफ सागर से बंधी है। सब तरफ सागर उसको पकड़े हुए है, तो ही वह है। सब तरफ सागर ने उसको उठाया, तो ही वह है। सब तरफ सागर उसको सम्हाले है, तो ही वह है। सागर छोड दे तो वह गयी। तो ये दो अलग नहीं है, लेकिन फिर भी मै कहता हूँ कि अलग है। अलग इसलिए कहता हूँ कि लहर को भ्रम न हो जाय, वह अपने को अमृत, निराकार और शाश्वत न समझ ले। अलग है, तो

भ्रम हो सकता है, भ्रम की कठिनाई पैदा हो सकती है। अगर एक ही है तो भ्रम नहीं होगा। एक का ऐसा अनुभव हो जाय तब तो वह कहेगी कि मैं हूँ ही नहीं, सागर ही है। जैसे जीसस बार-बार कहते हैं कि मैं कहाँ हूँ, वही है पिता जो ऊपर है। मैं नहीं हूँ। वही है। हमें दिक्कत होती है। हमें बहुत कठिनाई होती है। क्योंकि या तो हम ऊपर पिता को खोजना चाहते हैं कि वह कौन है ऊपर, कहाँ है? और या फिर इस आदमी को हम पागल समझते हैं कि आदमी क्या कह रहा है। तुम्हीं तो हो, और कौन है? पर जीसस यही कह रहे हैं कि लहर मैं नहीं हूँ, सागर ही हूँ। पर हमें लहरों के सिवाय किसी चीज का कभी कोई दर्शन नहीं हुआ। इसलिए सागर हमारे लिए सिर्फ शब्द है। जो है वस्तुतः वह हमारे लिए केवल शब्द है और जो मात्र दिखायी पड़ता है वह हमारे लिए सत्य है। इसलिए मैंने कहा कि शरीर मरणधर्मा है, मृत्यु है। चैतन्य, चिन्मय मरणधर्मा नहीं है, वरन् अमृत्व है। और उस अमृत्व के ऊपर ही सारी मृत्यु का खेल है।

सागर और लहर को तो हमें समझने में कठिनाई नहीं होती, क्योंकि हमने कभी सागर और लहर में इतनी दुश्मनी नहीं मानी। लेकिन मृत्यु में और अमृत में हमें बड़ी मुश्किल होती है, क्योंकि हमने बड़ी दुश्मनी मान रखी है। दुश्मनी हमारी मानी हुई है। सागर और लहर जब मैं कहता हूँ तो आपको कठिनाई नहीं होती, आप कहते हैं बड़े निकट के अस्तित्व हैं, ठीक कहते हैं। लेकिन मृत्यु और अमृत्व बड़े विपरीत हैं। पदार्थ और परमात्मा तो बड़े विपरीत हैं। जन्म और मृत्यु तो बड़े विपरीत हैं। ये तो एक नहीं हो सकते। ये भी एक ही हैं। मृत्यु को जितना गहरे जाकर जानेंगे, पायेंगे, परिवर्तन से ज्यादा नहीं है। लहर भी परिवर्तन से ज्यादा नहीं है। अमृत को भी जितना खोजेंगे, पायेंगे वह शाश्वत, इटरनिटी है और कुछ भी नहीं है। इस जगत् में जो जो हमें विपरीत दिखायी पड़ता है वह अपने विपरीत पर ही निर्भर होता है। हमारे दिखायी पड़ने में विपरीत के कारण बड़ी अड़चन है। हम मृत्यु को और अमृत को बिलकुल अलग रखते हैं। लेकिन मृत्यु जी नहीं सकती अमृत के बिना। उसको भी होने के लिए अमृत से ही थोड़ा सहारा उधार लेना पड़ता है, जितनी देर होती है उतनी देर अमृत के ही कन्धे पर हाथ रखना पड़ता है। झूठ को भी थोड़ी देर चलना हो तो सत्य के कन्धे पर थोड़ा हाथ रखना पड़ता है। झूठ को भी थोड़े कदम रखने हों तो उसको कहना पड़ता है, मैं सत्य हूँ। सत्य शायद दावा नहीं करता कि मैं सत्य हूँ, लेकिन झूठ सदा दावा करता है कि मैं सत्य हूँ। बिना दावा के वह चल नहीं सकता इंच भर। चला कि गिरा। उसको चिल्ला कर घोषणा करनी पड़ती है कि सम्हल जाओ, मैं आ रहा हूँ, मैं सत्य हूँ। वह सब प्रमाण लेकर साथ चलता है कि मैं सत्य क्यों हूँ। सत्य,

कोई प्रमाण लेकर नहीं चलता। उसके लिए झूठ के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं है। वह सहारा लेगा तो दिक्कत में पड़ेगा, झूठ सहारा न लेगा तो दिक्कत में पड़ जायगा। अमृत के लिए मृत्यु के सहारे की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन मृत्यु की घटना तो अमृत के सहारे ही घटती है। शाश्वत के लिए परिवर्तन की कोई जरूरत नहीं, लेकिन परिवर्तन की घटना शाश्वत के बिना नहीं घट सकती। इतना जरूर तय है कि जो परिवर्तनशील है वही हमारी स्थिति है, हम सिर्फ परिवर्तनशील को ही जानते हैं। इसलिए जब भी शाश्वत के सम्बन्ध में सोचते हैं तो हम परिवर्तनशील से ही कुछ अनुमान लगाते हैं। और कोई उपाय नहीं है। हमारी हालत ऐसी है जैसा कि अँधेरे में खड़ा आदमी अँधेरे से ही प्रकाश का अनुमान लगाये। उसके पास और कोई उपाय नहीं है। यद्यपि अंधकार भी प्रकाश का ही धीमा रूप है, अँधकार भी प्रकाश के बहुत कम होने की स्थिति है। कोई अँधकार ऐसा नहीं है जहाँ प्रकाश न हो। क्षीण होगा, क्षीण भी कहना ठीक नहीं है, सिर्फ हमारी इन्द्रियों की पकड़ के लिए क्षीण है। हमारी इन्द्रियाँ नहीं पकड़ पातीं उसे। अन्यथा हमारे पास से इतने बड़े प्रकाश के बवण्डर निकल रहे हैं जिसका कोई हिसाब नहीं कि हम देख लें तो हम अंधे हो जायें। जब तक एक्स-रे नहीं थी, हम सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी के भीतर भी किरणें आर-पार हो रही हैं। हम सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी के भीतर की हड्डी की तस्वीर भी किसी दिन बाहर आ जायेगी। आज नहीं कल और गहरी किरण खोज ली जायेगी और हम एक बच्चे की माँ के पेट में, जो पहला अणु है, उसके आर-पार किरण को डाल सकेंगे तो हम उसकी पूरी जिन्दगी देख लेंगे कि वह क्या क्या हो जायगा। इसकी सारी सम्भावनाएँ हैं। हमारे पास से बहुत तरह का प्रकाश गुजर रहा है, पर हमारी आँख नहीं पकड़ रही है। नहीं पकड़ती है इसलिए हमारे लिए अँधेरा है। जिसे हम अँधेरा कहते हैं उसका कुल मतलब इतना ही है कि ऐसा प्रकाश जिसे हम नहीं पकड़ रहे हैं, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन फिर भी अँधेरे में खड़े होकर कोई आदमी प्रकाश के बाबत जो भी अनुमान लगायेगा वह गलत होंगे, माना कि अँधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। माना कि मृत्यु भी अमृत का एक रूप है, फिर भी मृत्यु से अमृत के बाबत जो भी अनुमान लगाये जायेंगे वे गलत होंगे। हम अमृत को जान लें तो ही कुछ होता है, अन्यथा कुछ भी नहीं होता।

मृत्यु से घिरे हुए व्यक्ति अमृत से जो मतलब लेते हैं उनका मतलब इतना ही होता है केवल, कि हम नहीं मरेंगे, जो कि बिलकुल गलत है। अमृत का मतलब है अमर। मृत्यु से घिरे आदमी के अर्थ की पहुँच इतनी है कि मैं मरूँगा नहीं। पर जो जानता है अमृत को, उसका मतलब है कि 'मैं कभी था ही नहीं।' इन

दोनों का फर्क बुनियादी है, गहरा है। मरने को जानने वाला आदमी कहता है कि ठीक पक्का हो गया न, आत्मा अमर है ? फिर मैं कभी नहीं मरूँगा। वह हमेशा फ्यूचर ओरिएँटेड होगा, उसका जो मतलब होगा। वह भविष्य में होगा। फिर मैं कभी नहीं मरूँगा। वह ममेशा फ्यूचर ओरियेण्टेड होगा, उसका जो मतलब होगा। वह भविष्य में होगा। जो आदमी जान लेगा अमृत को वह कहेगा, मैं कभी था ही नहीं, मैं कभी हुआ ही नहीं। वह हमेशा पास्ट ओरिएण्टेड होगा। चूँकि सारा विज्ञान हमारा मृत्यु के हाथ में घिरा हुआ है, इसलिए सारा विज्ञान भविष्य की बात करता है। और सारा धर्म चूँकि अमृत के आसपास घिरा था इसलिए वह अतीत की बात करता है—ओरिजिन की, एण्ड की नहीं। स्रोत, मूल स्रोत क्या है ? धर्म कहता है, जगत् कहाँ से पैदा हुआ, कहाँ से हम आये ? धर्म कहता है कि अगर इस बात को ठीक से जान लें कि जहाँ से हम आये हैं वह स्रोत क्या है तो हम निश्चिन्त हो जायेंगे कि कहाँ हम जायेंगे। क्योंकि जहाँ से हम आये हैं उससे अन्यथा हम जा नहीं सकते। जो हमारा मूल है वही हमारी डेस्टिनी है, वही हमारी निति है, वही हमारा अन्त है। जो हमारा आदि है वही हमारा अन्त है। इसलिए सारे धर्म की चिन्तना 'आदि' की खोज में है। ह्वाट इज दि ओरिजिन, जगत् आया कहाँ से है ? अस्तित्व कहाँ से पैदा हुआ, आत्मा कहाँ से आयी, सृष्टि कहाँ हुई ! सारी चिन्तना धर्म की पीछे की खोज है, आखिर की। और सारा विज्ञान आगे की खोज है। हम जा कहाँ रहे हैं, हम पहुँचेंगे कहाँ ? हम हो क्या जायेंगे ? कल क्या होगा ? अन्त क्या है ? उसका कारण यह है कि विज्ञान की सारी खोज मरणधर्मा कर रहा है। धर्म की सारी खोज उनकी है जिनके मृत्यु की बात समाप्त हो गयी है। और मजे की बात यह है कि मृत्यु सदा भविष्य में है। मृत्यु का अतीत से कोई लेना-देना नहीं है। जब भी आप मृत्यु के सम्बन्ध में सोचेंगे अतीत का कोई सवाल ही नहीं, बात ही खतम हो गयी। मृत्यु सदा आनेवाले कल में है। और जीवन जहाँ से आया है वह सदा 'कल था'। जहाँ से जीवन आ रहा है, जहाँ से गंगा आ रही है वह तो गंगोत्री से आ रही है। जहाँ गिरेगी, वह सागर है। जहाँ मिटेगी वह 'कल है'। जहाँ बनी है वह 'कल था'।

मृत्यु से घिरा आदमी जो भी अर्थ निकालेगा वह मृत्यु के ही अनुमान होंगे। इसलिए दूसरे तल की बात पहले तल का अनुमान नहीं है। दूसरे तल की बात दूसरे तल का अनुभव है। यह भी बहुत मजे की बात है कि जो दूसरे तल को जान लेता है वह पहले को तो जानता ही है, लेकिन जो पहले को जानता है वह जरूरी रूप से दूसरे को नहीं जानता है। इसलिए अगर हमने बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को प्रज्ञावान कहा, बुद्धिमान कहा, तो हमारा उन्हें बुद्धिमान कहने का

कारण दूसरा है। वे दो तलों को जानते हैं, हम एक तल को जानते हैं। इसलिए उनकी बात हमसे ज्यादा अर्थपूर्ण है। क्योंकि जितना हम जानते हैं उतना तो वे जानते ही हैं। इसमें तो अड़चन नहीं है, उन्होंने भी मृत्यु को जाना है। उन्होंने भी दुःख जाना है, उन्होंने भी क्रोध जाना है, उन्होंने भी हिंसा जानी है। उतना तल परिवर्तन है। पश्चिम के मुल्कों में ज्ञान जो है वह उसी तल पर एक्यूमुलेशन है, उसी तल पर। आइन्स्टीन जितना ही जानता हो, हम जो जानते हैं, हममें और उसमें केवल क्वांटिटेटिव अन्तर होगा। जैसे, हम इस टेबल को ही नाप पाते हैं, उसने सारे विश्व को नाप लिया। यह अन्तर परिमाण का है, मात्रा का है। कोई गुणात्मक अन्तर नहीं है। यानी कुछ ऐसा वह नहीं जानता है जो कि मुझसे भिन्न है। हाँ, मेरे का ही विस्तार है। मैं कम जानता हूँ, वह ज्यादा जानता है। मेरे पास एक रुपया है उसके पास करोड़ रुपये हैं। लेकिन जो मेरे पास है, उससे भिन्न उसके पास नहीं है। बुद्ध और महावीर को जब हम कहते हैं ज्ञानी, तो हमारा मतलब दूसरा है। यह हो सकता है कि हमारे तल पर हम ही उनसे ज्यादा जानते हों। लेकिन हमारा उन्हें ज्ञानी कहने का मतलब है कि वे दूसरे तल पर कुछ जानते हैं, जिसका हम कुछ भी नहीं जानते। एक नयी यात्रा उन्होंने शुरू की है, क्वालिटेटिव अन्तर है। इसलिए ऐसा हो सकता है कि महावीर को आइन्स्टीन के सामने खड़ा करें तो आइन्स्टीन जो जानता है उस मामले में महावीर बहुत ज्यादा ज्ञानी सिद्ध न हों; उतना एक्यूमुलेशन उनके पास न हो। वे कहेंगे, मैं तो टेबल ही नाप सकता हूँ, तुम सारे संसार को नाप लेते हो। तुम दूर चाँद-तारों की भी लम्बाई बता देते हो, मैं नहीं बता सकता। मैं तो इस कमरे को ही नाप लूं तो बहुत है। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम मुझसे ज्यादा ज्ञानी नहीं हो। क्योंकि तुम जो जानते हो, वह कन्सीवेबल है। अगर कमरा नापा जा सकता है तो तारे भी नापे जा सकते हैं। इसमें कहीं कोई क्रान्ति घटित नहीं हो गयी है। आइंस्टीन के भीतर कोई म्यूटेशन नहीं हो गया है। यह कोई दूसरा आदमी नहीं। यह आदमी वही है। हाँ, उसमें ही ज्यादा कुशल है जिसमें हम अकुशल हैं। उसमें ही ज्यादा गतिमान है जिसमें हम मंद-गति हैं। उसमें ही दूर तक गया जिसमें हम थोड़ी दूर गये हैं। उसमें ही गहरा गया जिसमें हम बाहर से ही लौट आये। लेकिन कहीं और नहीं है उसका प्रवेश।

बुद्ध या महावीर या उस तरह के लोग जिनको हमने बुद्धिमान कहा उनसे हमारा प्रयोजन है कि जो तल है जानने का, मृत्यु का, उसके पार वे वहाँ गये जहाँ अमृत है, और उनकी बात का मूल्य है। इसे यों समझें कि एक आदमी जिसने कभी शराब नहीं पी उसकी बात का बहुत मूल्य नहीं है कि वह क्या कह रहा है।

एक आदमी, जिसने शराब पी है उसकी बात का भी बहुत मूल्य नहीं है। लेकिन एक आदमी जिसने शराब पी, और शराब के पार भी गया, उसकी बात का बहुत मूल्य है। जिसने शराब पी नहीं, वह बचपन है, उसने कोई प्रौढ़ता नहीं पायी। उसका वक्तव्य चाइल्डिस है। इसलिए शराब नहीं पीने वाले कभी भी शराब पीनेवालों को समझ नहीं पाते। क्योंकि नहीं पीने वाले चाइल्डिस मालूम होते हैं, बचकानी। शराब पीने वाला कहता है, कि तुम तो जो जानते हो वह हमने भी जाना है। हम उससे कुछ ज्यादा जानते हैं। अगर तुम भी पीकर देखो तभी तुम कुछ कह सको। लेकिन जिसने शराब पी और छोड़ी, शराब पीने वाला उसकी बात का मूल्य करता है। यूरोप और अमरीका में एक संगठन है शराब पीने वालों का। अल्कोहल्स, अनानिमस, एक बहुत व्यापक आन्दोलन है। इसमें सिर्फ वे ही लोग सम्मिलित हो सकते हैं जो शराब में गहरे गये हैं। और यह शराब छुड़ानेवालों का आन्दोलन है लेकिन इसमें सिर्फ शराब पीने वाले ही सम्मिलित हो सकते हैं। और यह हैरानी की बात है कि शराब पीनेवालों की मण्डलियाँ किसी भी नये शराब पीनेवाले की फौरन शराब छुड़वा देती हैं। क्योंकि वह मेच्योर्ड है। शराब पीने वाला उसकी बात समझ पाता है। क्योंकि जो कह रहा है वह अनुभवी है। गैर अनुभव से नहीं कह रहा है, उसने भी पिया है, वह भी इसी तरह गिरा है, वह भी इन्हीं कठिनाइयों से गुजरा है और पार हुआ है। उसकी बात का कोई मूल्य है। पर फिर भी यह मैंने उदाहरण के लिए कहा है—शराब पियो, कि न पियो, कि पीने के बाद छोड़ दो, बहुत तल का फर्क नहीं है। हाँ एक तल के भीतर ही सीढ़ियों का फर्क है। लेकिन एक बार अमृत का अनुभव हो जाय तो सारा तल परिवर्तित हो जाय। अगर बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट जैसे लोगों की बात का इतना गहरा परिणाम हुआ तो उसका कारण यह था। हम जो जानते थे वे जानते ही हैं। हम जो नहीं जानते वह भी वे जानते हैं। और जो उन्होंने नया जाना है उस नये जानने से वे कह रहे हैं कि हमारे जानने में बुनियादी भूलें हैं।

प्रश्न : आचार्यजी, महावीर पर हुई चर्चा में आपने बताया था कि महावीर पूर्व जन्म में ही परम उपलब्धि को प्राप्त हो चुके थे। केवल अभिव्यक्ति के लिए करुणावश उन्होंने पुनः जन्म धारण किया था। इसी प्रकार कृष्ण के बारे में भी आपका कहना था कि वे तो जन्म से ही सिद्ध थे। अब, जब जबलपुर में आपकी और मेरी जो वार्ता हुई थी, उससे मुझे ऐसा आभास हुआ था कि जो बात महावीर और कृष्ण के बारे में आपने बतायी थी वही बात आप पर भी घटित होती है। अतएव प्रश्न उठता है, यदि ऐसी बात है तो आपको किस करुणावश जन्म लेना

पड़ा। इस सम्बन्ध में अपने पूर्व जन्मों और पूर्व जन्मों की उपलब्धियों पर भी प्रकाश डालने की कृपा करें ताकि वे साधक के लिए उपयोगी हो सकें। और यह भी कि पिछले जन्म और इस जन्म में समय का कितना अन्तराल रहा।

उत्तर : इसमें बहुत-सी बातें ख्याल में लेनी पड़ेंगी। पहली तो यह कि ऐसे व्यक्तियों के जन्म के सम्बन्ध में यह जान लें कि जब उनकी एक जन्म में ज्ञान की यात्रा पूरी हो गयी हो तो अब व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह चाहे तो एक जन्म और ले और चाहे तो न ले। बिलकुल स्वतन्त्रता की स्थिति है। सच तो यह है कि वही एक जन्म स्वतन्त्रता से लिया गया होता है। अन्यथा कोई जन्म स्वतन्त्रता का नहीं है। चुनाव नहीं है बाकी जन्मों में। बाकी जन्म तो हमारी वासना की बहुत मजबूरियाँ हैं। लेने पड़े हैं। जैसे धकाये गये हैं या खींचे गये हैं, या दोनों ही बातें एक साथ हुई हैं। धकाये गये हैं पिछले कर्मों से, खींचे गये हैं आगे की आकांक्षाओं से। और यों हमारा जन्म साधारणतः बिलकुल ही परतन्त्र घटना है। उसमें चुनाव का मौका नहीं है। सचेतन रूप से हम चुनते हैं कि हम जन्म लें। सचेतन रूप से सिर्फ एक ही मौका आता है चुनने का, और वह तब आता है जब पूरी तरह व्यक्ति ने स्वयं को जान लिया होता है। वह घटना घट गयी होती है कि अब जिसके आगे पाने को कुछ भी नहीं होता। ऐसा क्षण आ जाता है जब वह व्यक्ति कह सकता है कि अब मेरे लिए कोई भविष्य नहीं है। क्योंकि मेरे लिए कोई वासना नहीं है। ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं न पाऊँ तो मेरी कोई पीड़ा है। यह बहुत ही शिखर का क्षण है, पीक है। इस शिखर पर ही पहली दफा स्वतन्त्रता मिलती है। ये बड़े मजे की बात है जीवन के रहस्यों में कि जो चाहेंगे कि स्वतन्त्र हों वे स्वतन्त्र नहीं हो पाते। और जिनकी कोई चाह नहीं रही वे स्वतन्त्र हो जाते हैं। जो चाहते हैं कि यहाँ जन्म ले लें, वहाँ जन्म लेने का उनके लिए कोई उपाय नहीं है। और जो अब इस स्थिति में हैं कि उनके लिए कहीं जन्म लेने का कोई सवाल नहीं रहा, अब वह इस सुविधा में हैं कि वह चाहें तो कहीं भी जन्म ले लें। लेकिन यह भी एक ही जन्म के लिए सम्भव हो सकता है। इसलिए नहीं कि एक जन्म के बाद उसे स्वतन्त्रता नहीं रह जायेगी जन्म लेने की। स्वतन्त्रता तो सदा होगी। लेकिन एक जन्म के बाद स्वतन्त्रता के उपयोग करने का भाव ही अक्सर खो जाता है। वह अभी रहेगा। इस जन्म में यदि आपको घटना घट गयी परम अनुभव की, तो स्वतन्त्रता तो मिल गयी आपको। लेकिन जैसा कि सदा होता है, स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही स्वतन्त्रता का उपयोग करने की जो भाव-दशा है वह एक दम नहीं खो जायेगी। उसका भी उपयोग किया जा सकता है। पर जो बहुत गहरे जानते हैं वह कहेंगे कि यह भी एक बन्धन

है। इसलिए जैनों में, जिन्होंने इस दिशा में सर्वाधिक गहन खोज की उनकी खोज की कोई भी तुलना नहीं है सारे जगत् में। उन्होंने सिर्फ तीर्थंकर-गोत्रबन्ध उसको नाम दिया। यह आखिरी बन्धन है। स्वतन्त्रता का बन्धन है। आखिरी, कि इसका भी उपयोग कर लेने का एक मन है। वह मन ही है। इसलिए सिद्ध तो बहुत होते हैं, तीर्थंकर सभी नहीं होते। परम ज्ञान को कई लोग उपलब्ध होते हैं, लेकिन तीर्थंकर नहीं होते। तीर्थंकर होने के लिए, यानी इस स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिए एक विशेष तरह के कर्मों का जाल अतीत में होना चाहिए। शिक्षक होने का, टीचरहुड का एक लम्बा जाल होना चाहिए। अगर वह पीछे है वह तो वह आखिरी धक्का देगा। और जो जाना गया है वह कहा जायगा। जो पाया गया है वह बताया जायगा। जो मिला है वह बाँटा जायगा।

इस स्थिति के बाद सारे लोग दूसरा जन्म यानी एक जन्म और लेते हैं, ऐसा नहीं है। कभी करोड़ों में एकाध लेता है। इसलिए जैनों ने तो करीब-करीब औसत तय कर रखी है कि एक सृष्टि-कल्प में सिर्फ चौबीस जन्म धारण करते हैं। वह बिलकुल औसत है—जैसे हम कह सकते हैं आज बम्बई की सड़कों पर कितने एक्सीडेंट हुए। पिछले तीस साल का सारा औसत निकाल लेंगे तो आज हम कह सकते हैं कि बम्बई में इतने एक्सीडेंट हुए। वह करीब-करीब सही होने वाले हैं। ठीक ऐसे ही चौबीस का जो औसत है, वह औसत है। वह अनेक कल्पों के स्मरण का औसत है, अनेक कल्पों के। अनेक बार सृष्टि के बनने का और मिटने का जो सारा का सारा स्मरण है, उस स्मरण में अन्दाजन सबका हम भाग दें वह चौबीस है। यानी एक पूरी सृष्टि के बनने और मिटने के बीच चौबीस व्यक्ति ऐसा बन्ध कर पाते हैं, कि वह एक जन्म का और उपयोग करें। इसमें दूसरी बात भी ख्याल रख लेनी चाहिए कि जब हम कहते हैं बम्बई में इतने एक्सीडेंट होंगे आज, तो हम लण्डन के एक्सीडेंट की बात नहीं कर रहे हैं। या हम कहते हैं मरीन ड्राइव के रास्ते पर इतने एक्सीडेंट होंगे, फिर हम बम्बई के और रास्तों की भी बात नहीं कर रहे हैं।

जैनों का जो हिसाब है वह उनके अपने रास्ते का है, उसमें जीसस की गणना नहीं होगी। कृष्ण और बुद्ध की भी गणना नहीं होगी। लेकिन एक बहुत मजे की बात है कि जब हिन्दुओं ने भी गणना की तब वह चौबीस अनुपात पड़ा, उनके रास्ते पर और जब बुद्धों ने गणना की तब भी चौबीस अनुपात पड़ा, उनके रास्ते पर। इसलिए चौबीस अवतारों का ख्याल उन्हें आ गया। चौबीस तीर्थंकरों का जैनों में था ही और चौबीस बुद्धों का ख्याल बौद्धों को आ गया। इसका कभी

बहुत गहरा हिसाब ईसाइयत ने और इस्लाम ने लगाया नहीं। लेकिन इस्लाम ने यह जरूर कहा कि मुहम्मद पहले आदमी नहीं, पहले और लोग हो गये और चार लोगों के लिए मुहम्मद ने इशारे भी किये थे कि मुझसे पहले चार लोग हुए थे। वह इशारे दो कारणों से अधूरे और धुँधले हैं। वह इसलिए अधूरे और धुँधले हैं कि मुहम्मद के पीछे की परम्परा में मुहम्मद का रास्ता नहीं है। मुहम्मद से शुरू होता है। महावीर जितनी स्पष्टता से गिना सके अपने पीछे के चौबीस आदमी, उतना दूसरा नहीं गिना सका। क्योंकि महावीर पर वह रास्ता करीब-करीब पूरा होता है। तो अतीत के बाबत बहुत साफ हुआ जा सकता था। मुहम्मद के आगे मामला था, उसके बाबत साफ होना बहुत कठिन था। जीसस ने भी पीछे के लोगों की गणना करवायी थी। लेकिन वह भी धुँधली है, क्योंकि जीसस का भी रास्ता नया शुरू होता है। बुद्ध ने पीछे के लोगों की कोई साफ गणना नहीं करवायी, सिर्फ कभी-कभी बात की। इसलिए चौबीस बुद्धों की बात है, पीछे के नाम एक भी नहीं है। इस मामले में जैनों की खोज भी गहरी है और बहुत प्रामाणिक रूप से है। बहुत मेहनत की है उस मामले में। एक-एक व्यक्ति का पूरा ठिकाना, हिसाब सारा रखा है। प्रत्येक रास्ते पर अन्दाजन चौबीस लोग हैं। ऐसे लोग ही एक जन्म और लेते हैं ज्ञान के बाद। यह जन्म, मैंने कहा, करुणा से होगा।

इस जगत् में बिना कारण कुछ भी नहीं हो सकता। और कारण केवल दो ही हो सकते हैं—या तो कामना हो, या करुणा हो। तीसरा कोई कारण नहीं हो सकता। या तो मैं कुछ लेने आपके घर जाऊँ, या कुछ देने आऊँ। तीसरा कोई उपाय क्या हो सकता है? आपके घर में लेने जाऊँ तो कामना हो, या कुछ देने आऊँ तो करुणा हो। तीसरा आपके घर आने का कोई अर्थ नहीं, कोई कारण नहीं, कोई प्रयोजन नहीं है। कामना से जितने जन्म होंगे वह सब परतन्त्र होंगे। क्योंकि आप माँगने के सम्बन्ध में स्वतन्त्र कभी भी नहीं हो सकते। भिखमँगा कैसे स्वतन्त्र हो सकता है? भिखमँगे के स्वतन्त्र होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सारी स्वतन्त्रता देने वाले पर निर्भर है, लेने वाले पर क्या निर्भर हो सकता है। लेकिन देने वाला स्वतन्त्र हो सकता है। तुम न भी लो, तो भी दे सकता है? लेकिन तुम न दो, तो ले नहीं सकता। महावीर और बुद्ध का जो सारा का सारा दान है वह हमने लिया, यह जरूरी नहीं है। वह दिया उन्होंने, इतना निश्चित है। लेना, अनिवार्य रूप से नहीं निकलता, लेकिन दिया उन्होंने अवश्य। जो मिला, उसे बाँटने की इच्छा स्वाभाविक है, पर वह भी अन्तिम इच्छा है। इसलिए उसको भी बन्ध ही कहा है, जो जानते हैं उन्होंने उसको भी

कर्म-बन्ध ही कहा है। वह भी बन्धन है, आखिरी। लेकिन आना तो मुझे आपके घर तक पड़ेगा ही—चाहे मैं माँगने आऊँ, चाहे देने आऊँ। आपके घर से बँधा तो रहूँगा ही। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आपके घर से न भी बँधा रहूँ, पर आना तो पड़ेगा ही आपके घर तक। और बड़ी जो कठिनाई है वह यह है कि चूँकि आपके घर सदा माँगने वाले ही आते हैं और आप भी सदा कहीं माँगने ही गये हैं, इसलिए जो देने आयेगा उसके समझने की कठिनाई स्वाभाविक है। और यह भी मैं आपसे कहूँ कि इसलिए एक बहुत जटिल चीज पैदा हुई है। चूँकि आप देने को समझ ही नहीं सकते, इसलिए बहुत बार ऐसे आदमी को आपसे लेने का भी भी ढोंग करना पड़ा। आपके लिए यह बात बिलकुल ही समझ के परे है कि कोई आदमी आपके घर देने आया हो, तो वह आपके घर रोटी माँगने आ गया है। इसलिए महावीर के सारे उपदेश जो हैं, वह किसी घर में भोजन माँगने के बाद दिये गये उपदेश हैं—वह सिर्फ धन्यवाद है। आपने जो भोजन दिया उसके लिए धन्यवाद है। अगर महावीर भोजन माँगने आये तो आपकी समझ में आ जाता है। वह पीछे धन्यवाद देने में दो शब्द कहकर चले जाते हैं। आप इसी प्रसन्नता में होते हैं कि दो रोटी हमने दी है, बड़ा काम किया। करुणा में आप इसको भी न समझ पायेंगे, क्योंकि करुणा की दृष्टि को यह भी देखना पड़ता है कि आप ले भी सकेंगे? और अगर आपको देने का कोई भी उपाय न किया जाय तो आपका अहंकार इतनी कठिनाई पायगा कि बिलकुल न ले सकेगा, इसलिए यह अकारण नहीं है कि महावीर और बुद्ध भिक्षा माँगते हैं। यह अकारण नहीं है। क्योंकि आप उस आदमी को बरदाश्त ही नहीं कर सकते जो सिर्फ दिये चला जाय। आप उसके दुश्मन हो जायेंगे। आप उसके बिलकुल दुश्मन हो जायेंगे। यह बहुत उल्टा लगेगा देखने में कि जो आदमी आपको दिये ही चला जाय, आप उसके दुश्मन हो जायेंगे, क्योंकि वह आपको देने का कोई मौका ही नहीं दे रहा है। आपसे वह कुछ माँगता ही नहीं है। तो कठिनाई हो जाती है। इसलिए वे छोटी-मोटी चीजें आपसे माँग लेता है। कभी भोजन माँग गया, कभी उसने कहा कि चीवर नहीं है, कभी उसने कहा कि ठहरने की जगह नहीं है। उसने आपसे कुछ माँग लिया, आप देकर निश्चिन्त हो गये। आप बराबर हो गये। लेवल हेन्डेड! बराबर हाथ आ गया। आपने कुछ दिया। बल्कि सदा आपने यही जाना कि आपने तो कुछ ज्यादा दिया, उसने तो कुछ भी नहीं दिया, बस दो शब्द कहे। हमने तो एक मकान दे दिया, हमने एक दुकान दे दी या हमने एक थैली भेंट कर दी—हमने कुछ दिया! उसने क्या दिया, उसने दो बातें कह दीं। बुद्ध ने तो अपने अपने संन्यासी को भिक्षु ही नाम दे दिया कि तू भिक्षु के साथ ही चल,

तू भिखारी होकर ही दे सकेगा, तुझे देना है। ढंग तू रखना माँगने का, और देने का इन्तजाम करना।

करुणा की अपनी कठिनाइयाँ हैं और उस तल पर जीने वाले आदमी की बड़ी मुसीबतें हैं। उसकी मुसीबतें हम समझ ही नहीं सकते। वह ऐसे लोगों के बीच जी रहा है जो न उसकी भाषा समझ सकते हैं, जो सदा ही उसे मिसअण्डरस्टैन्ड करेंगे, जो उसे कभी समझ ही नहीं सकते। यह अनिवार्यता है इसमें उसको कोई हैरानी नहीं होती। जब आप उसे गलत समझते हैं तब कोई हैरानी नहीं होती है, क्योंकि स्वाभाविक है यह, यह होगा ही। आप अपनी जगह से ही तो अनुमान लगायेंगे। तो जिन लोगों के जीवन में, पिछले जन्मों में अगर बहुत ज्यादा बाँटने की क्षमता का विकास न हुआ हो, तो वह ज्ञान होते ही तत्काल तिरोहित हो जाता है। दूसरा जन्म उसका नहीं बनता।

इस सम्बन्ध में यह भी समझ लेने जैसा है कि बुद्ध और महावीर का सबका सम्राटों के घर में पैदा होना एक और गहरे अर्थ से जुड़ा हुआ है। जैनों ने तो स्पष्ट धारणा बना रखी थी कि तीर्थंकर का जो जन्म हो, वह सम्राट् के घर में ही हो। और मैंने पीछे बात भी की है कि महावीर का गर्भ तो हुआ था एक ब्राह्मणी के गर्भ में, लेकिन कथा है कि देवताओं ने उस गर्भ को निकाल कर क्षत्रिय के गर्भ में पहुँचाया। उसे बदला। क्योंकि तीर्थंकर को सम्राट् के घर में ही पैदा होना है। कारण? यह सिर्फ इसलिए है कि सम्राट् के द्वार पर पैदा होकर अगर वह भिखारी हो जाय तो लोगों पर अधिक प्रभावशाली होगा। लोग ज्यादा समझ सकेंगे उसे, क्योंकि सम्राट् से उनकी सदा ही लेने की आदत रही है। शायद उस आदत की वजह से थोड़ा-सा जो यह देने आया है, वह भी इसे ले सकेंगे। सम्राट् की तरफ सदा ही ऊपर देखने की आदत रही है। वह सड़क पर भीख माँगने भी खड़ा हो जायगा तो बिलकुल ही उसे नीचे नहीं देखेंगे, वह पुरानी आदत थोड़ा सहारा देगी। इसलिए यह टेक्निकल है, तकनीकी ख्याल था वह। क्योंकि उसे उस घर से ही पैदा करके लाना चाहिए। और चूँकि चुनाव उसके हाथ में था इसलिए इसमें कठिनाई न थी। चुना जा सकता था।

इन सारे लोगों का, महावीर या बुद्ध का, सारा ज्ञान पिछले जन्म का है। वह सारा का सारा इस जन्म में बँटता है। पूछा जा सकता है कि यह ज्ञान अगर पिछले जन्म का है तो महावीर और बुद्ध इस जन्म में भी साधना करते हुए दिखायी पड़ते हैं। इससे ही सारी भ्रांति पैदा हुई है। क्योंकि महावीर फिर साधना क्यों करते हैं, बुद्ध साधना क्यों करते हैं? कृष्ण ने ऐसी कोई साधना नहीं की;

महावीर और बुद्ध ने साधना की। यह साधना सत्य को पाने के लिए नहीं है। सत्य तो पा लिया गया है, लेकिन उस सत्य को बाँटना, पाने से कोई कम कठिन बात नहीं है। थोड़ा ज्यादा ही कठिन है। और अगर एक विशिष्ट तरह के सत्य देने हों तो बात और कठिन होती है। जैसे कि कृष्ण का सत्य जो है, वह विशेष तरह का नहीं है। कृष्ण का सत्य बिलकुल निर्विशेष है। इसलिए कृष्ण जैसी जिन्दगी में हैं, वहीं से उसको देने की कोशिश में सफल हो सके। महावीर और बुद्ध के सत्य बहुत ही स्पेशलाइज्ड हैं। वह जिस मार्ग की बात कर रहे हैं, वह मार्ग बहुत ही विशिष्ट है। और वह मार्ग इस भाँति विशिष्ट है कि अगर महावीर किसी से कहें कि तू तीस दिन उपवास कर ले और उसे पता हो कि महावीर ने कभी उपवास नहीं किया,, वह सुनने के लिए राजी नहीं हो सकता। वह यह सुनने के लिए राजी ही नहीं हो सकता। महावीर को बारह साल लम्बे उपवास, सिर्फ जिनको उन्हें कहना है, उनके लिए करने पड़े हैं। अन्यथा इनको उपवास की बात ही नहीं कही जा सकती। महावीर को बारह वर्ष मौन उनके लिए रहना पड़ा है जिनको बारह दिन मौन रखवाना हो। नहीं तो महावीर की बात ये सुनने वाले नहीं हैं। बुद्ध की तो और भी एक मजेदार घटना है। बुद्ध एक बिलकुल नयी साधना-परम्परा को शुरू कर रहे थे, महावीर कोई नहीं साधना-परम्परा को शुरू नहीं कर रहे थे। महावीर के पास तो पूर्ण विकसित विज्ञान था एक, जिसमें वे अन्तिम थे, प्रथम नहीं। शिक्षकों की एक लम्बी परम्परा थी, बड़ी शानदार परम्परा थी। यह बहुत सुशृंखलित परम्परा थी, जिसमें शृंखला इतनी साफ थी जो कभी नहीं खोई। जिसमें परम्परा से मिली हुई धरोहर थी। महावीर तक तो वह इतनी ही सातत्यपूर्ण थी कि जिसका कोई हिसाब नहीं। इसलिए महावीर को कोई नया सत्य नहीं देना था। एक सत्य देना था जो चिरपोषित था, और चिर परम्परा से जिसके लिए बल था। परन्तु महावीर को अपना व्यक्तित्व तो खड़ा करना ही था कि जिस व्यक्तित्व से लोग उन्हें सुन सकें। नहीं तो लोग सुन नहीं सकेंगे। यह मजे की बात है कि जैनों ने महावीर को सर्वाधिक याद रखा और बाकी तेईस को सर्वाधिक भूल गये। यह भी बहुत आश्चर्यजनक है, क्योंकि महावीर आखिरी हैं। न तो पायोनियर हैं, न तो प्रथम हैं। न ही कोई नया अनुदान है महावीर का। जो जाना हुआ था, बिलकुल परखा हुआ था, उसको ही प्रकट किया है। फिर भी महावीर सर्वाधिक याद रहे और बाकी तेईस बिलकुल ही पौराणिक जैसे हो गये। मैथोलोजिकल हो गये। और अगर महावीर न होते तो तेईस का आपको नाम भी पता न होता। उसका गहरा कारण, महावीर ने जो बारह साल अपने व्यक्तित्व को निर्मित करने का प्रयास किया, वह है। अन्य तीर्थंकरों ने

निर्माण नहीं किया था। ये अपनी साधना सम्भाल रहे थे। महावीर का बहुत व्यवस्थित उपक्रम था। साधना में कभी व्यवस्थित उपक्रम नहीं होता। महावीर के लिए साधना का एक अभिनय था, जिसको उन्होंने बहुत सुचारुरूप से पूरा किया। इसलिए महावीर की प्रतिभा जितनी निखर कर प्रकट हुई उतनी बाकी तेईस की नहीं निखरी। वे सब फीके हो गये। महावीर ने बिलकुल कलाकार की तरह व्यक्तित्व को खड़ा किया। सुनियोजित था मामला। क्या उन्हें करना है इस व्यक्तित्व से, उसकी पूरी तैयारी थी। उस पूरी तैयारी के साथ वह प्रकट हुए।

बुद्ध पहले थे इस अर्थ में, कि वह एक नया सूत्र साधना का लेकर आये। इसलिए बुद्ध को एक दूसरे ढंग से गुजरना पड़ा। यह बहुत मजे की बात है, और उससे भ्रांति पैदा हुई कि बुद्ध साधना कर रहे हैं। बुद्ध को भी पहले ही जन्म में अनुभव हो चुका है। इस जन्म में उन्हें अनुभव बाँटना है। लेकिन बुद्ध के पास कोई सुनियोजित परम्परा नहीं है। बुद्ध की खोज एकदम निजी, वैयक्तिक खोज है। उन्होंने एक नया मार्ग तोड़ा है। उसी पहाड़ पर एक नयी पगडंडी तोड़ी है, जिसपर राजपथ भी है। महावीर के पास बिलकुल राजपथ है। जिसकी चाहे उद्‌घोषणा करनी हो, जिसे चाहे लोग भूल गये हों, लेकिन जो बिलकुल तैयार है। परन्तु बुद्ध को एक रास्ता तोड़ना है इसलिए बुद्ध ने एक दूसरी तरह की व्यवस्था की, इस जन्म में। पहले सब तरह की साधनाओं में वे गये। और प्रत्येक साधना से गुजर कर उन्होंने कहा, बेकार है। इससे कोई कहीं नहीं पहुँचता। और अन्त में अपनी साधना की घोषणा की कि इससे मैं पहुँचा हूँ, और इससे पहुँचा जा सकता है। यह बहुत ही, जिसको कहना चाहिए मैनेज थी बात, बहुत व्यवस्थित थी। जिसको भी नयी साधना की घोषणा करनी हो उसे पुरानी साधनाओं को गलत कहना ही पड़ेगा। और अगर बुद्ध बिना गुजरे कहते गलत, जैसा कि कृष्ण-मूर्ति कहते हैं, तो इतना ही परिणाम होता जितना कृष्णमूर्ति का हो रहा है। क्योंकि जिस बात से आप गुजरे नहीं है, उसको आप गलत कहने के भी हकदार नहीं रह जाते। अभी कोई यहाँ से गया होगा कृष्णमूर्ति के पास, उसने कुण्डलिनी के लिए पूछा होगा, उन्होंने कहा सब बेकार है। तो मैंने उससे कहा कि तुम्हें उनसे पूछना था कि आप अनुभव से कह रहे हैं या बिना अनुभव से? कुण्डलिनी के प्रयोग से आप गुजरे हैं, या बिना गुजरे कह रहे हैं? अगर बिना गुजरे कह रहे हैं तो बिलकुल बेकार बात कह रहे हैं। अगर गुजर के कह रहे हैं तब तो दो सवाल पूछने चाहिए, कि गुजरने में आप सफल हुए हैं कि असफल होकर कह रहे हैं? अगर सफल हुए हैं, तो नानसेंस कहना गलत है। अगर असफल हुए हैं तो ऐसा मान लेना जरूरी नहीं है कि आप असफल हुए हैं इसलिए और लोग भी असफल

हो जायेंगे। तो बुद्ध को सारी साधनाओं से गुजरकर लोगों को दिखा देना पड़ा कि यह भी गलत है, यह भी गलत है, यह भी गलत है। इनसे कोई कहीं नहीं पहुँचता। अब जिससे मैं पहुँचा हूँ वह मैं तुमसे कहता हूँ। महावीर ने उन्हीं साधनाओं से गुजर कर घोषणा की है कि यह सही है, जो परम्परा से तैयार है। बुद्ध ने घोषणा की कि वह सब गलत है, और एक नयी दिशा खोजी। मगर ये दोनों ही व्यक्ति पिछले जन्मों से उपलब्ध हैं।

कृष्ण भी पिछले जन्म से उपलब्ध हैं। लेकिन कृष्ण कोई विशेष मार्ग साधना का नहीं दे रहे हैं। कृष्ण जीवन को ही साधना बनाने का मार्ग दे रहे हैं। इसलिए किसी तपश्चर्या में जाने की उन्हें कोई जरूरत नहीं; रही बल्कि वह बाधा बनेगी। अगर महावीर यह कहें कि दूकान पर बैठ कर मोक्ष मिल सकता तो महावीर का खुद का व्यक्तित्व बाधा बन जायगा। महावीर से लोग पूछेंगे कि फिर तुमने क्यों छोड़ दिया ? कृष्ण अगर जंगल में तपश्चर्या करने जायँ और फिर युद्ध के मैदान पर खड़े होकर कहें कि युद्ध में भी मिल सकता है, तो फिर बात नहीं सुनी जा सकती। फिर तो अर्जुन भी कहता कि क्यों धोखा देते हैं मुझे। आप खुद जंगल में जाते हो और मुझे जंगल जाने नहीं देते। तो यह प्रत्येक शिक्षक के ऊपर निर्भर करता है कि वह क्या देने वाला है। इसके अनुकूल उसको सारी जिन्दगी खड़ी करनी पड़ेगी। बहुत बार उसे ऐसी व्यवस्थाएँ जिन्दगी में करनी पड़ेंगी जो कि बिलकुल ही आर्टिफीशियल हैं। मगर जो उसे देना है उसे देने के लिए उनके बिना मुश्किल है। वह नहीं दिया जा सकता।

अब इसमें मेरे बाबत पूछते हैं, जो थोड़ा कठिन है। मुझे सरल पड़ता है बुद्ध या कृष्ण या महावीर की बात पूछने में। दो तीन बातें ख्याल में लेकिन ली जा सकती हैं। एक तो पिछला जन्म कोई सात सौ साल के फासले पर है। इसलिए बहुत कठिनाई भी है। महावीर का पिछला जन्म केवल ढाई सौ साल के फासले पर है। बुद्ध का पिछला जन्म केवल अठहत्तर साल के फासले पर है। बुद्ध के तो इस जन्म में वे लोग भी मौजूद थे जो पिछले जन्म की गवाही दे सके। महावीर के जन्म में भी इस तरह के लोग मौजूद थे जो अपने पिछले जन्मों में महावीर के जन्म का स्मरण कर सके। कृष्ण का जन्म कोई दो हजार साल बाद हुआ इसलिए कृष्ण ने जितने नाम लिये हैं वह सब नाम अति प्राचीन हैं। और उनका कोई स्मरण नहीं जुटाया जा सकता। सात सौ साल लम्बा फासला है। जो व्यक्ति सात सौ साल बाद पैदा होता है, उसके लिए लम्बा फासला नहीं है। क्योंकि जब हम शरीर के बाहर हैं तब एक क्षण और सात सौ साल में कोई फर्क नहीं है। क्योंकि टाइम स्केल हमारा शरीर के साथ शुरू होता है। शरीर के बाहर तो कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आप सात सौ साल

रहे हैं या सात हजार साल रहे हैं। लेकिन शरीर में आते ही अन्तर पड़ता है। और यह भी बड़े मजे की बात है कि यह जो पता लगाने का उपाय है कि एक व्यक्ति का, जैसे अपना ही मैं कहता हूँ कि मैं सात सौ साल नहीं था, तो इस सात सौ साल का मुझे कैसे पता लगेगा ? यह भी सीधा पता लगाना बहुत कठिन है। यह भी मैं उन लोगों की तरफ देखकर पता लगा सकता हूँ जो इस बीच में कई दफा जन्मे। समझिये कि एक व्यक्ति मुझसे सात सौ साल पहले परिचित था मेरे पिछले जन्म में। बीच में मेरा तो गैप है, लेकिन वह दस दफा जन्म ले चुका। और उसके दस जन्मों की स्मृतियों का संग्रह है। उसी संग्रह से मैं हिसाब लगा सकता हूँ कि मैं बीच में कितनी देर तिरोहित था। नहीं तो नहीं हिसाब लगा सकता। हिसाब लगाना कठिन हो जाता है। क्योंकि हमारा जो टाइम स्केल है, जो नाप का हमारा पैमाना है, वह शरीर के पार का जो टाइम है उसका नहीं है; शरीर के इस तरफ जो टाइम है उसका है।

करीब-करीब ऐसा है, जैसे मेरी एक क्षण को झपकी लग जाय, मैं सो जाऊँ और और एक सपना देखूं। सपने में देखूं कि वर्षों बीत गये,—ऐसा सपना देखूं, और क्षण भर बाद आप मुझे उठा दें और कहें कि आपको झपकी लग गयी। तब मैं आपसे पूछूं कि कितना समय गुजरा और आप कहें कि क्षण भर भी नहीं बीता होगा। मैं कहूँ कि यह कैसे हो सकता है ? क्योंकि मैंने तो वर्षों लम्बा सपना देखा है। सपने में, एक क्षण में वर्षों लम्बा सपना देखा जा सकता है। टाइम स्केल अलग है। और सपने से लौटकर अगर उस आदमी को इस जगत् में कोई भी उपाय न मिले जानने का कि मैं कब सोया था, तो पता लगाना मुश्किल है, वह कितनी देर सोया। वह तो यहाँ जो घड़ी रखी है वह बताती है कि जब मैं जाग रहा था तब बारह बजे थे और अभी सोकर उठा हूँ तो बारह बजकर एक ही मिनट हुआ है। वह आपकी तरफ देखता है। आप अभी यहीं बैठे हैं तो ही पता लगता है, अन्यथा पता नहीं लगता। यों सात सौ साल का पार होना जाना गया है, और दूसरी बात आपने पूछी कि क्या मैं पूरे ज्ञान को लेकर पैदा हुआ ? तो इसमें दो बातें समझनी पड़ेंगी जो थोड़ी भिन्न हैं।

कहना चाहिए करीब-करीब पूरे ज्ञान को लेकर पैदा हुआ। करीब-करीब इसलिए कहता हूँ कि जानके कुछ चीजें बचा ली हैं। जान के भी बचायी जा सकती हैं। इस सम्बन्ध में भी जैनों का हिसाब बहुत वैज्ञानिक है। जैनों ने ज्ञान के चौदह हिस्से तोड़ दिये हैं। तेरह इस जगत् में, और चौदहवां अन्दर चला जायगा। तेरह गुण-स्थान कहते हैं उनको। तेरह लेयर्स हैं—इनमें कुछ ऐसे गुण-स्थान हैं जिनकी छलांग लगायी जा सकती है, जिनसे बच के निकला जा सकता है।

जिन्हें छोड़ा जा सकता है, जो आप्शनल हैं। जरूरी नहीं है कि उनसे गुजरा जाय। उनको पार किया जा सकता है। लेकिन उनको पार करने वाला व्यक्ति तीर्थंकर-बन्ध को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। वह जो आप्शनल है, शिक्षक को तो वह भी जानना चाहिए। जो वैकल्पिक है उसे भी जानना चाहिए। जो अनिवार्य है, साधक के लिए तो पर्याप्त है, लेकिन शिक्षक के लिए पर्याप्त नहीं है। वैकल्पिक भी जानना पड़ता है। इन तेरह में कुछ गुण-स्थान वैकल्पिक हैं। ऐसी कुछ ज्ञान की दिशाएँ हैं जो कि सिद्ध के लिए आवश्यक नहीं हैं, वह सीधा मोक्ष जा सकता है। लेकिन शिक्षक के लिए जरूरी हैं।

दूसरी बात, इसमें एक सीमा के बाद, जैसे बारहवें गुणस्थान के बाद, वह जो दो शेष अवस्थाएँ रह जाती हैं उनको लंबाया जा सकता है। उनको एक जन्म में पूरा किया जा सकता है, दो जन्म में पूरा किया जा सकता है, तीन जन्म में पूरा किया जा सकता है। और उनको लम्बाने का उपयोग किया जा सकता है। जैसा मैंने कहा, पूरा ज्ञान हो जाने के बाद तो एक जन्म के बाद कोई उपाय नहीं है। एक जन्म से ज्यादा सहयोगी नहीं हो सकता व्यक्ति। लेकिन बारहवें गुणस्थान के बाद अगर दो गुणस्थानों को रोक लिया जाय तो वह बहुत जन्मों तक सहयोगी हो सकता है। और उसे रोकने की सम्भावना है। बारहवें गुण-स्थान पर करीब-करीब बात पूरी हो जाती है, लेकिन मैं कहता हूँ करीब-करीब। जैसे कि सब दीवालें गिर जाती हैं और सिर्फ एक पर्दा रह जाता है, जिसके आरपार भी दिखायी पड़ता है। लेकिन फिर भी परदा होता है। जिसको हटाकर उस तरफ जाने की कोई कठिनाई नहीं है। उस तरफ जाकर जो देखने को मिलेगा, वह यहाँ से भी देखने को मिल रहा है। यानी अन्तर भी नहीं पड़ता। इसीलिए मैं कहता हूँ करीब-करीब। एक कदम हटाकर उस तरफ चला जाना हो जाय तो एक जन्म और लिया जा सकता है। लेकिन उस पर्दे के इस पार खड़ा रहा जाय तो कितने ही जन्म लिये जा सकते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन पार जाने के बाद एक बार से ज्यादा इस तरफ आने का कोई उपाय नहीं है।

पूछा जा सकता है कि महावीर और बुद्ध को भी यह ख्याल था? यह सबको साफ रहा है। फिर इसका तो और उपयोग किया जा सकता था। लेकिन बहुत स्थितियों में बुनियादी फर्क है। यह बड़े मजे की बात है कि परम ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद केवल बहुत ही एडवान्स साधकों पर उपयोग किया जा सकता है उसके ज्ञान का, और कोई उपयोग किया नहीं जा सकता। जिन लोगों पर बुद्ध और महावीर काम कर रहे थे जन्मों से, जो उनके साथ चल रहे थे बहुत रूपों में, उनके लिए एक जन्म काफी था। कई बार तो ऐसा हुआ कि एक जन्म भी

जरूरी नहीं रहा। इस जन्म में अगर ज्ञान हो गया बीस साल की उम्र में एक आदमी को, और साठ साल उसको जिन्दा रहना है तो बचे चालीस साल में ही यदि काम हो सका तो बात समाप्त हो गयी। कोई लौटने की जरूरत न रही। लेकिन अब हालतें बिलकुल अजीब हैं। अब जिसको हम कह सकें बहुत विकसित साधक, वह न के बराबर है। अगर उन पर भी काम करना हो तो भविष्य के शिक्षकों को अनेक जन्मों के लिए तैयारी रखनी पड़ेगी। तभी उन पर काम किया जा सकता है, नहीं तो काम नहीं किया जा सकता। तब बात और थी कि महावीर या बुद्ध को, जब भी वे छोड़ते थे अपना आखिरी जीवन, तब सदा उनके पास कुछ लोग थे जिनको आगे का काम सौंपा जा सके, आज वह हालत बिलकुल नहीं है। आज, आदमी का पूरा का पूरा ध्यान बाह्यमुखी है। और इसलिए आज शिक्षक के लिए ज्यादा कठिनाई है जो कभी भी नहीं थी। क्योंकि एक तो उसे ज्यादा मेहनत करनी पड़े, ज्यादा अविकसित लोगों के साथ मेहनत करनी पड़े, और हर बार मेहनत के खो जाने का डर है। फिर ऐसे आदमी मिलने मुश्किल होते हैं जिनको काम सौंपा जा सके। जैसे कि नानक के मामले में हुआ।

गोविन्द सिंह तक, दस गुरुओं तक काम सौंपने वाला आदमी मिलता गया। गोविन्द सिंह को सिलसिला तोड़ देना पड़ा। बहुत कोशिश की। यानी गोविन्द सिंह ने इतनी कोशिश की इस जमीन पर जैसी कभी किसी को नहीं करनी पड़ी कि एक आदमी मिल जाय ग्यारहवाँ सिलसिला जारी रखने के लिए। लेकिन एक आदमी नहीं मिल सका। क्लोज कर देना पड़ा, फिर बात खत्म हो गयी। ग्यारहवाँ आदमी अब नहीं होगा। क्योंकि यह जो होना है यह इस कन्टीन्युटी में ही हो सकता है, जरा-सा भी ब्रेक हो तो यह नहीं हो सकता। इसमें जरा सा भी अन्तराल हो जाय तो फिर यह नहीं हो सकता। वह जो दिया जाना है वह कठिन हो जायगा।

बौद्ध धर्म को हिन्दुस्तान से चीन जाना पड़ा, क्योंकि चीन में आदमी उपलब्ध था जिसको दिया जा सकता था। लोग समझते हैं कि हिन्दुस्तान से कोई बौद्ध धर्म का प्रचार करने बौद्ध भिक्षु चीन गये, गलत है ख्याल। यह ऊपर से जो इतिहास को देखते हैं उनकी समझ है। हुईनेन नाम का आदमी चीन में उपलब्ध था जिसको कि दिया जा सकता था। और बड़े मजे की बात है कि हुईनेन आने के लिए राजी नहीं था। जो कठिनाई है इस जगत् की वह बहुत अद्भुत है। हुईनेन आने को राजी नहीं था। क्योंकि उसे भी अपनी सम्भावनाओं का कोई पता नहीं था। बौद्ध धर्म को यहाँ से यात्रा करनी पडी। और एक वक्त आया कि चीन से भी हटा देना पड़ा और जापान में जाकर देना पड़ा।

यह जो सात सौ साल का फासला रहा कई लिहाज से कठिनाई का है। दो लिहाज से कठिनाई का है—एक तो जन्म लेने की कठिनाई रोज बढ़ती जायेगी। जो भी व्यक्ति किसी स्थिति को उपलब्ध हो जायगा, उसे जन्म खोजना कठिन होता जायगा। बुद्ध और महावीर के वक्त कोई कठिनाई नहीं थी। रोज ऐसे गर्भ उपलब्ध थे। जहाँ ऐसे व्यक्ति पैदा होते थे। खुद महावीर के वक्त में आठ परम ज्ञानी हुए थे बिहार में। ठीक महावीर की स्थिति के। अलग-अलग आठ मार्गों से वे काम कर रहे थे। निकटतम स्थिति के तो हजारों लोग थे। थोड़े बहुत नहीं थे, हजारों लोग थे जिनको काम कभी भी सौंपा जा सकता था। जो सम्हालेंगे, आगे बढ़ा देंगे। आज तो किसी को जन्म लेना हो, तो आगे और हजारों साल प्रतीक्षा करनी पड़े तब वह दूसरा जन्म ले सके। इस बीच उसने जो काम किया था वह सब खो जाता है। इस बीच जिन आदमियों पर काम किया था उनके दस जन्म हो जायेंगे, दस जन्मों की पर्तें उनके ऊपर हो जायेंगी, जिनको काटना कठिन हो जायगा। अब तो किसी भी शिक्षक को परदे के पार होने में काफी समय लेना पड़ेगा। उसे अपने को रोकना पड़ेगा। और अगर कोई पर्दे के पार हो गया तो वह दूसरा जन्म लेने को, आगे एक भी जन्म चुनने को राजी नहीं होगा, क्योंकि वह बेकार है। उसका कारण है। एक जन्म भी लेना बेकार है। क्योंकि किसके लिए लेना है ? उस एक में अब काम नहीं हो सकता। यानी मुझे पता हो कि इस कमरे में आकर घंटे भर में काम हो जायगा तो आने का मतलब है। और अगर काम हो ही नहीं सकता तो उचित नहीं है। उचित एक कारण से और नहीं है। करुणा इस सम्बन्ध में दोहरे अर्थ रखती है। एक तो आपको जो देना है, वह भी करुणा चाहती है। लेकिन वह यह भी जानती है कि अगर सिर्फ आपसे कुछ छीन लिया जाय और दिया न जा सके तो आपको और खतरे में डाल दे। आपका खतरा कम नहीं होता, बढ़ जाता है। अगर मैं आपको कुछ दिखा सकता हूँ तो दिखा दूँ, यदि न दिखा सकूँ, और आपको जो दिखायी पड़ता था उसमें भी आप अंधे हो जायें तो और कठिनाई हो जाती है।

इस सात सौ साल में दो तीन बातें और ख्याल में लेनी चाहिए। पहली तो यह कि कभी मेरे ख्य।ल में नहीं था कि उसकी बात उठेगी, लेकिन अभी अचानक पूना में बात उठ गयी। मेरी माँ आयी होगी, उसको रामलाल पुंगलिया ने पूछा होगा कि मेरे बारे में पहले से पहला उनको कोई अनुभव ध्यान में हो तो मुझे बता दें। मैं तो सोचता था कि उसकी बात कभी उठने की सम्भावना ही नहीं होगी। और मुझे पता ही नहीं था कि कब उनकी बात हुई। अभी उन्होंने मीटिंग में इसको जाहिर किया। मेरी माँ ने उनको कहा कि मैं तीन दिन तक रोया नहीं। और

तीन दिन तक मैंने दूध नहीं पिया। वह उनको, मेरा पहला स्मरण है। और यह ठीक है। सात सौ वर्ष पहले, पिछला जो मेरा जन्म था, उसमें मरने के पहले इक्कीस दिन के एक अनुष्ठान की व्यवस्था थी। २१ दिन पूर्ण उपवास करके मैं वह शरीर छोड़ दूंगा। उससे कुछ प्रयोजन थे। लेकिन वह इक्कीस दिन पूरे नहीं हो सके। तीन दिन बाकी रह गये। वे तीन दिन इस बार, इस जन्म में पूरे करने पड़े। वह कन्टीन्युटी है वहाँ से। वहाँ बीच का समय नहीं अर्थ रखता कोई भी। तीन दिन पहले हत्या ही कर दी गयी पिछले जन्म में। इक्कीस दिन पूरे नहीं हो सके, तीन दिन पहले हत्या कर दी गयी और वह तीन दिन छूट गये। वह तीन दिन इस जन्म में पूरे हुए। वह इक्कीस दिन अगर पूरे हो जाते उस जन्म में, तो शायद आगे एक जन्म से दूसरा जन्म लेना कठिन हो जाता। अब इसमें बहुत-सी बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं।

उस पर्दे के पास खड़े होना और पार न होना बड़ा कठिन है। उस पर्दे से देखना और पर्दे को न उठा लेना बहुत कठिन है। यह कब उठ जाता है इसका ठीक होश रखना भी कठिन है। उस पर्दे के पास खड़े रहना और पर्दे को न उठाना करीब-करीब असम्भव मामला है। वह सम्भव हो सका, क्योंकि तीन दिन पहले हत्या कर दी गयी। इसलिए निरन्तर इधर मैंने बहुत बार कई सिलसिलों में कहा है कि जैसे जीसस की हत्या के लिए जुडास की कोशिश रही।—गोया जीसस से दुश्मनी नहीं है जुडास की। तो जिस आदमी ने मेरी हत्या कर दी उसमें भी दुश्मनी नहीं है। हालाँकि वह दुश्मन की तरह ही लिया गया। दुश्मन की तरह ही लिया जायगा। वह हत्या कीमती हो गयी। वह तीन दिन चूक गये मृत्यु के क्षण में। उस जीवन की पूरी साधना के बाद वह तीन दिन जो कर सकते थे, इस जन्म में इक्कीस वर्षों में हो पाया। एक-एक दिन के लिए सात-सात वर्ष चुकाने पड़े। इसलिए मैं कहता हूँ कि उस जन्म से पूरा ज्ञान लेकर मैं नहीं आया, कहता हूँ करीब-करीब पूरा! पर्दा उठ सकता था, लेकिन तब एक जन्म होता, अभी एक जन्म और ले सकता हूँ। अभी एक जन्म की सम्भावना और है। लेकिन वह इस पर निर्भर करेगा कि मुझे लगे, कि कुछ उपयोग हो सकेगा कि नहीं। इस जन्मभर पूरी मेहनत करके देख लेने से पता लगेगा कि कुछ उपयोग हो सकता है तो ठीक है, अन्यथा वह बात समाप्त हो जाती है। उसका कोई प्रयोजन नहीं। हत्या उपयोगी हो गयी।

जैसा मैंने कहा कि समय का स्केल बदलता है वैसा चित्त की दशाओं में भी भी समय का स्केल भिन्न होता है। जन्म के वक्त, समय बहुत मन्द गति होता है। मृत्यु के वक्त बहुत तीव्र गति होता है। समय की गति का हमें कभी कोई ख्याल

नहीं, क्योंकि हम तो समझते हैं कि समय की कोई गति नहीं होती। हम तो समझते हैं कि समय में सब गति होती है। अभी तक बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक को भी समय में भी गति होती है, टाइम वैलोसिटी भी है, इसका कोई ख्याल नहीं है। और इसलिए ख्याल नहीं है कि टाइम वैल्योसिटी अगर हम बना लें, समय की गति बना लें, तो बाकी गति को नापना मुश्किल हो जायगा। समय को हमने स्थिर रखा है। हम कहते हैं कि एक घण्टे में तीन मील चला, लेकिन अगर घण्टा भी तीन मील में में कुछ चला हो तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। हमने घण्टे को स्थिर किया है। उसको हमने स्टेटिक मान लिया। उसको हमने स्थिर कर लिया है कि यह तय है। नहीं तो सब अस्त-व्यस्त हो जायगा। तो समय को हमने स्टेटिक बनाया हुआ है। यह बड़े मजे की बात है कि समय ही सबसे ज्यादा नान-स्टेटिक है, समय सबसे ज्यादा तरल है और गतिमान है। समय यानी परिवर्तन ! उसको हमने बिलकुल फिक्स्ड खड़ा कर रखा है, खूंटे की तरह गाड़ दिया है। उसको गाड़ा इसलिए है कि हमारी सारी गतियो को नापना मुश्किल हो जायगा। यह जो समय की गति है, यह भी चित्त-दशा के अनुसार कम और ज्यादा होती है। बच्चे की समय की गति बहुत धीमी होती है, बूढ़े की समय की गति बहुत तीव्र होती है, बहुत कंपैक्ट हो जाती है, सिकुड़ जाती है। थोड़े स्थान में सपय ज्यादा गति करता है बूढ़े के लिए। बच्चे के लिए ज्यादा स्थान में समय बहुत धीमी गति करता है। प्रत्येक पशु के लिए भी गति अलग-अलग होती है। आदमी का बच्चा चौदह साल में जितनी गति कर पाता है, कुत्ते का बच्चा बहुत थोड़े महीनों में ही उतनी गति कर लेता है। कई पशुओं के बच्चे और भी जल्दी गति कर लेते हैं। कुछ पशुओं के बच्चे करीब-करीब पूरे पैदा होते हैं। जमीन पर उन्होंने पैर रखा कि उनमें, और उनके एडल्ट में कोई फर्क नहीं होता। वे पूरे होते हैं। इसीलिए पशुओं को समय का बहुत बोध नहीं है। गति बहुत तीव्र होती है। इतनी तीव्रता से हो जाती है कि बच्चा पैदा हुआ घोड़े का और चलने लगा। उसे पता ही नहीं चलता कि पैदा होने और चलने के बीच में समय का फासला है। आदमी के बच्चे को समय का फासला पता चलता है, इसलिए आदमी समय से पीड़ित प्राणी है। समय से बहुत परेशान है, एकदम कंपित है। समय जा रहा है। समय भागा जा रहा है।

तो उस जन्म के आखिरी क्षण में तीन ही दिन में काम हो सकता था, क्योंकि समय कम्पेक्ट था। कोई १०६ वर्ष की उम्र थी। और समय बिलकुल कम्पैक्ट था। गति तीव्रता से हो सकती थी। तीन दिन की बात वह इस जन्म के बचपन से शुरू हुई। वहाँ तो अन्त था, पर इक्कीस वर्ष इस जन्म में उसको पूरा होने में लगे। कई बार अवसर चूका जाय तो एक-एक दिन के लिए सात-सात साल

चुकाने पड़ सकते हैं। तो इस जन्म में पूरा लेकर नहीं आया, करीब-करीब पूरा लेकर आया। लेकिन अब मेरी सारी व्यवस्था मुझे अलग करनी पड़ेगी।

मैंने कहा, महावीर को एक व्यवस्था करनी पड़ी। एक तपश्चर्या, जिसके माध्यम से वह दे सके। बुद्ध को दूसरी व्यवस्था करनी पड़ी।—एक-एक तपश्चर्या को गलत करके, एक तपश्चर्या। मुझे बिलकुल व्यर्थ ही, जो महावीर-बुद्ध को कभी नहीं करना पड़ा, वह करना पड़ा। मुझे व्यर्थ ही सारे जगत में जो भी है वह पढ़ना पड़ा। बिलकुल व्यर्थ, उसका कोई प्रयोजन नहीं। क्योंकि आज के जगत को अगर कोई भी मैसेज दी जा सकती है तो न तो उपवास करने वाले की आज के जगत की कोई फिक्र है, न आँखें बन्द करके बैठे आदमी की कोई फिक्र है। आज के जगत को अगर कोई भी मैसेज जा सकती है, अगर कोई भी तपश्चर्या जा सकती है तो वह आज के जगत के पास जो एक बौद्धिक ज्ञान का विराट् अम्बार लग गया है, उस सबको आत्मसात् करके ही जा सकती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिए मैंने पूरी जिन्दगी किताब के साथ लगायी। और मैं आपसे कहता हूँ कि महावीर को तकलीफ भूखे रहने में नहीं हुई। क्योंकि जिससे मुझे कुछ लेना देना नही है, उसपर मुझे व्यर्थ ही श्रम करना पड़ा है। लेकिन उस श्रम के बाद ही आज के युग के लिए बात सार्थक हो सकती थी, अन्यथा नहीं हो सकती। और कोई उपाय नहीं। आज का युग उस बात को ही समझ सकेगा, अन्यथा नहीं समझ पायेगा।

यह अगर ख्याल में आ जाय तो कठिन नहीं है बहुत, कि आपको अपने पिछले जीवन का भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल आने लगे। और मैं चाहूँगा कि जल्दी वह ख्याल आपको लाऊँ। क्योंकि वह ख्याल आने लगे तो एक बड़ी समय की और शक्ति की बचत हो जाती है। अक्सर यह होता है कि आप हर बार वहाँ से शुरू करते हैं जहाँ से आपने छोड़ा नहीं था। यानी करीब-करीब आप हर बार अ ब स से शुरू करते हैं। अगर आपको पिछला स्मरण आ जाय तो आपको अ ब स से शुरू करना नहीं होता है, जहाँ आपने छोड़ा था उसके आगे आप शुरू करते हैं और तब कोई गति हो पाती है, नहीं तो गति नहीं हो पाती। अब यह समझने जैसा है। पशुओं की कोई गति नही हो पायी है। वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं कि पशु वहीं के वहीं रिपीट करते रहते हैं। बन्दर के पास करीब-करीब आदमी से थोड़ा ही कम विकसित मस्तिष्क है। मगर विकास का अन्तर बहुत भारी है, जितना मस्तिष्क में अन्तर नहीं है। बात क्या है? क्या कठिनाई है? इस वर्तुल में बन्दर आगे क्यों नहीं बढ़ते? वह ठीक वहीं हैं जहाँ दस लाख साल पहले थे। और अभीतक हम सोचते थे कि विकास हो रहा है सबमें, लेकिन यह असंदिग्ध है बात। डार्विन

की यह बात बहुत संदिग्ध है। क्योंकि लाखों साल से बन्दर वहीं के वहीं हैं। वह विकसित नहीं हो रहा है। गिलहरी गिलहरी है, वह विकसित नहीं हो रही है। गाय गाय है, वह विकसित नहीं हो रही है। तो विकास, सिर्फ होने से नहीं हो रहा है, कहीं कोई और बात में फर्क पड़ रहा है। हर बन्दर को अपना प्रारम्भ वहीं से करना पड़ता है जहाँ उसके बाप को करना पड़ा है। उस बाप ने जहाँ अन्त किया वहाँ से बन्दर प्रारम्भ नहीं कर पाता। बाप कम्युनिकेट नहीं कर पाता है, यही सारी कठिनाई है। बाप ने जहाँ तक पाया अपनी जिन्दगी में, वह अपने बेटे को वहाँ से शुरू करवा नहीं पाता। बेटा फिर वहीं शुरू करता है जहाँ बाप ने शुरू किया था। फिर विकास होगा कैसे ? हर बार हर बेटा फिर वहीं से शुरू करता है। एक वर्तुल है जिसमें घूमकर फिर वहीं से आरम्भ हो जाता है। करीब-करीब ऐसी स्थिति जीवन के आत्मिक विकास की भी है। आप अगर इस जन्म को फिर वहीं से शुरू करते हैं जहाँ आपने पिछला जन्म शुरू किया था, तो आप कभी विकसित नहीं हो पायेंगे। आध्यात्मिक अर्थों में आपका कभी कोई इवोल्यूशन नहीं हो पायेगा। फिर अगले जन्म में आप वहीं से शुरू करेंगे जहाँ से शुरू किया था। हर बार अन्त करेंगे, हर बार शुरू करेंगे। शुरुआत का बिन्दु अगर वही रहा जो पिछला था तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

विकास का मतलब है, पिछला अन्तिम बिन्दु इस जन्म का पहला बिन्दु बन जाय। नहीं तो विकास नहीं नहीं हो सकता। मनुष्य ने विकास कर लिया, क्योंकि उसने भाषा खोज ली कम्युनिकेट करने को। बाप जो कुछ जान पाता है वह अपने बेटे को दे जाता है, शिक्षा दे जाता है। एजुकेशन का मतलब ही इतना है कि बाप की पीढ़ी ने जो जाना, वह बेटे की पीढ़ी को सौंप देगी। बेटे को वहाँ से शुरू न करना पड़ेगा जहाँ से बाप की पीढ़ी को करना पड़ा। बेटा वहाँ से शुरू करेगा जहाँ बाप अन्त कर रहा है, तो फिर गति हो जायेगी। तब यह स्पायरल जो है सर्कुलर नहीं होगा, स्पायरल हो जायगा। यह फिर एक ही जगह नहीं घूमेगा, ऊपर उठने लगेगा। यह पहाड़ की तरह ऊपर की तरफ चढ़ने लगेगा। जो मनुष्य के विकास में सही है वह एक-एक व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में भी सही है। आपके और आपके पिछले जन्म के बीच कोई कम्युनिकेशन नहीं है। आपने अपने पिछले जन्म से अभी तक कोई बातचीत नहीं की। आपने कभी पूछा नहीं कि कहाँ छूटा था मैं ?—वहाँ से शुरू करूँ, नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि फिर वही मकान बनाऊँ जहाँ मैंने पहले भी भी ईंटे भरी थीं, बुनियाद रखी थी, और मर गया। और फिर ईंटें भरूँ, फिर बुनियाद रखूँ और फिर मर जाऊँ। हमेशा बुनियाद ही भरता रहूँ तो शिखर कब उठेगा ? इसलिए मैंने जो यह थोड़ी

सी पिछले जन्म की बात की वह इसलिए नहीं कही कि मेरे बाबत आपको कुछ पता हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह सिर्फ इस कारण कह दी कि शायद उससे आपको थोड़ा ख्याल आना शुरू हो, पिछले जन्म की थोड़ी तलाश शुरू हो। क्योंकि उसी दिन आपके जीवन में आध्यात्मिक क्रान्ति होगी, उत्क्रान्ति होगी, जिस दिन आप पिछले जीवन के आगे इस जीवन में कदम उठायेंगे। अन्यथा अनेक जन्म भटक आयेंगे और कहीं भी नहीं पहुँचेंगे। वही पुनरुक्त हो जायगा। पिछले जीवन और इस जीवन के बीच संवाद चाहिए। पिछले जीवन में जो जो आपने पाया था उसकी शिक्षा अपने भीतर लें, और अपनी उसके आगे कदम उठाने की क्षमता चाहिए। इसलिए महावीर और बुद्ध ने सबसे पहले पिछले जन्मों की विराट् चर्चा की, इसके पहले शिक्षकों ने कभी नहीं की थी।

उपनिषद् वेद के शिक्षकों ने ज्ञान की बात कही थी, परम ज्ञान की बात कही। लेकिन कभी भी पिछले जन्मों के विज्ञान से उसको जोड़ने की बहुत चेष्टा नहीं की। महावीर तक आते आते यह बात साफ हो गयी। यह बहुत साफ हो गयी कि सिर्फ इतना कहना काफी नहीं है कि तुम क्या हो सकते हो, यह भी बताना जरूरी है कि तुम क्या थे ? क्योंकि तुम जो थे, उसके आधार के बिना तुम वह नहीं हो सकोगे, जो हो सकते हो। इसलिए महावीर का और बुद्ध का पूरा चालीस साल का समय लोगों को उनके पिछले जन्म स्मरण कराने में बीता। और जब तक एक आदमी पिछला जन्म स्मरण न कर ले तब तक वह कहते थे, आगे की फिक्र मत कर। तू पहले पीछे की पूरी फिक्र कर ले। साफ-साफ उस नकशे को देख ले, तू कहाँ तक चल चुका है। फिर आगे कदम रख। अन्यथा दौड़ होगी, व्यर्थ होगी। कहीं तू फिर उसी रास्ते पर दौड़ता रहा, जिस पर तू पहले भी दौड़ चुका है, तो सार क्या होगा ? इसलिए पुनर्स्मरण अत्यन्त अनिवार्य कदम था।

अब आज की कठिनाई यह है, पुनर्स्मरण कराया जा सकता है पिछले जन्मों का स्मरण कठिन जरा भी नहीं है। लेकिन साहस नाम की चीज खो गयी है। और पिछले जन्म का स्मरण तभी कराया जा सकता है जब कि इस जन्म की कैसी ही कठिन स्मृतियों में आप शान्त रह सकते हों, अन्यथा नहीं करवाया जा सकता। क्योंकि यह तो कुछ कठिन नहीं है। पिछले जन्म की स्मृतियाँ टूटेंगी तो बहुत कठिन होगा। और ये स्मृतियाँ तो इन्स्टालमेंट में मिलती हैं, वह तो इकट्ठी मिलेंगी। इसमें तो आज की तकलीफ आज झेल लेते हैं, कल भूल जाते हैं। कल की तकलीफ कल झेल लेते हैं, परसों भूल जाते हैं। पिछले जन्म की स्मृति तो पूरी की पूरी इकट्ठी टूट पड़ेगी,—इकट्ठी। फ्रेग्मेन्ट्स में नहीं आयेगी। वह तो पूरी की-पूरी आपके ऊपर आ जायेगी, एक साथ। उसको झेल पायेंगे कि

नहीं झेल पायेंगे ? उसके झेलने की कसौटी तभी मिलती है जब इस जन्म की सारी स्थिति में आपको कोई तकलीफ मालूम न पड़ती हो। इससे कोई पीड़ा नहीं, कोई अड़चन नहीं होती। कुछ भी हो जाय, कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस जीवन की कोई स्मृति आपके लिए चिन्ता न बनती हो, फिर ही पिछले जन्म की स्मृति में उतारा जा सकता है, नहीं तो वह महा चिन्ता हो जाय। और उस महाचिन्ता का द्वार तभी खोला जा सकता है जब झेलने की क्षमता और पात्रता हो।

●

तीन

•

वार्तालाप

१०-३-'७१

प्रश्न : आचार्यश्री, जिस इक्कीस दिन के अनुष्ठान की ओर आपने संकेत किया है, क्या वह साधना या तत्त्वानुभूति किसी परम्परागत थी ? क्योंकि आपके अभिव्यक्तिकरण से निरन्तर ऐसा भास होता है कि आप भी निश्चित ही किसी टीचर एवं तीर्थंकर की पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी के अन्तरगत यह जानने का साहस भी करना चाहता हूँ कि आप किसी परम्परा की अध्यात्म-शृंखला की कड़ी को जोड़ना चाहते हैं, या बुद्ध की भाँति किसी पहाड़ में नया मार्ग काटने का प्रयास कर रहे हैं ?

उत्तर : परम्परा से चली आनेवाली धारा तो परम्परागत है ही। बुद्ध का मार्ग भी अब नया नहीं है। जो परम्परा से चलते रहे वह तो मार्ग पुराना हो ही गया। लेकिन जो परम्परा को तोड़कर नयी परम्परा निर्मित करते रहे वह मार्ग भी अब नया नहीं है। उस भाँति भी बहुत लोग चल चुके। जैसे बुद्ध ने एक नयी पद्धति तोड़ी। महावीर पुरानी परम्परा को मानकर चल पड़े। लेकिन महावीर की शृंखला में भी पहले आदमी ने पद्धति तोड़ी थी। वह मार्ग भी सदा से पुराना नहीं था। महावीर की शृंखला के पहले तीर्थंकर ने वही काम किया था जो बुद्ध ने किया। परम्परा मानकर चलना भी पुराना है। नयी परम्पराएँ तोड़ना भी नयी घटना नहीं है। नहीं तो परपराएँ कैसे निर्मित होंगी। आज तो दोनों ही बातें पुरानी है। इसलिए इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि आज की स्थिति में दोनों ही बातों से भिन्न किसी चीज की जरूरत है। क्योंकि, दोनों तरह के लोग आज मौजूद हैं। अगर जार्ज गुरुजिएफ को हम देखें तो वे किसी पुरानी परम्परा के सूत्र को स्थापित करेंगे,—महावीर की तरह उसका काम है। अगर जे० कृष्णमूर्ति को देखें तो कोई नयी परम्परा का सूत्रपात करेंगे,—बुद्ध के जैसा उनका काम है। पर दोनों बातें पुरानी है।

बहुत परम्पराएँ तोड़ी जा चुकी हैं और बहुत नयी परम्पराएँ बनायी जा चुकी हैं। जो आज नयी परम्परा होती है वही कल पुरानी हो जाती है। जो आज पुरानी दिखायी पड़ती है वह कल नयी है। आज की स्थिति न तो ठीक वैसी है जहाँ महावीर शाश्वत हो सकें, और न ठीक वैसी है जहाँ बुद्ध शाश्वत हो सकें। क्योंकि लोग पुराने से बुरी तरह ऊब गये। एक और नयी घटना घटी है; लोग नये से भी बुरी तरह ऊब रहे हैं। क्योंकि सदा से ऐसा ख्याल था कि नया जो है, वह पुराने के विपरीत है। अब मनुष्य उस जगह है जहाँ उसे साफ दिखायी पड़ता है कि नया केवल पुराने का प्रारम्भ है। नये का मतलब है जो पुराना होगा। हमने नया कहा नहीं कि पुराना होना शुरू हो गया। अब नये का भी आकर्षण नहीं है। पुराने के प्रति विकर्षण था ही।

एक जमाना था, पुराने के प्रति आकर्षण था। बड़ा आकर्षण था। कोई चीज जितनी पुरानी थी उतनी कीमती थी क्योंकि उतनी परखी हुई थी। उतनी जानी पहचानी थी। उतनी प्रायोगिक थी, उतने अनुभव से गुजरी थी। परीक्षित थी भलीभाँति। भय न था, निरापद थी। चलने में किसी तरह के संदेह की जरूरत न थी। श्रद्धावान हुआ जा सकता था उसके प्रति। इतने लोग चल चुके थे, इतने पैर पड़ चुके थे, इतने लोग पहुँच चुके थे कि नये चलने वाले को आँख बन्द करके भी चलना हो तो चल सकता था। अंधे के लिए भी मार्ग था। जरूरत न थी कि वह बहुत संदेह करे, बहुत विचार करे, बहुत खोजे, बहुत निर्णय करे। फिर अज्ञात में बहुत निर्णय हो नहीं सकता। कितना ही संदेह कोई करे, अज्ञात की छलांग अन्ततः श्रद्धा से ही लगती है। सन्देह ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकता है कि किसी श्रद्धा तक पहुँचा दे। ताकि अन्ततः छलांग श्रद्धा से ही लगे। पर वैसे पुराने का आकर्षण भी खो गया। उस पुराने के आकर्षण के खो जाने के कारण थे।

पहला कारण तो यही बना कि जब तक एक व्यक्ति के लिए एक ही परम्परा का परिचय था तब तक तो असुविधा न थी, लेकिन जब बहुत पुरानी परम्पराएँ एक साथ एक व्यक्ति को परिचित हुई तब असुविधा पैदा हुई। जो आदमी हिन्दू घर में पैदा हुआ था, हिन्दू वातावरण में जिया था, हिन्दू मन्दिर के पास बड़ा हुआ था, हिन्दू मन्दिर की घण्टे की ध्वनि दूध के साथ खून में चली गयी थी, हिन्दू मन्दिर का देवता वैसा ही हिस्सा था हड्डी, खून, माँस का, जैसे हवा पहाड़, पानी सब था। और कोई प्रतियोगी न था। कोई मस्जिद न थी, कोई चर्च न था। कभी दूसरा कोई स्वर किसी दूसरी परम्परा का मन के भीतर न पड़ा था। पुराना इतना वास्तविक था कि उसमें प्रश्न नहीं लगाया जा सकता था। वह हम से भी

इतने पहले था कि हम उसमें ही बड़े होते और खड़े होते थे। उससे अन्यथा हम सोच ही नहीं सकते थे। फिर मन्दिर के पास मस्जिद आ गयी, चर्च आ गया, गुरुद्वारे आये। सारी परम्पराएँ एक साथ एक-एक व्यक्ति पर टूट पड़ीं। जैसे जैसे गति हुई, स्थान छोटे होते चले गये और सारी परम्पराएँ एक साथ टूट पड़ीं। कन्फ्यूजन स्वाभाविक था। तब कोई भी चीज असंदिग्ध रूप से नहीं ली जा सकती थी, क्योंकि संदेह कराने के लिए दूसरा सूत्र भी सामने खड़ा था। अगर मन्दिर घण्टे देकर पुकार कर रहा है कि आओ, भरोसा करो, तो पास ही मस्जिद अजान दे रही है कि गलत है, वहाँ भूल कर भी मत जाना! ये दोनों बातें एक साथ प्रवेश कर गयीं।

यह जो सारी दुनिया में इतना संदेह है, उस संदेह का मौलिक कारण मनुष्य की बुद्धिमानी का बढ़ जाना नहीं है। मनुष्य उतना ही बुद्धिमान है, जितना सदा था। कारण है मनुष्य की बुद्धि पर बहुत से संस्कारों का एक साथ पड़ जाना। और खास तौर से स्वविरोधी संस्कारों का। और हर रास्ता दूसरे रास्ते को गलत कहेगा ही। यह मजबूरी है। इसलिए नहीं कि दूसरा रास्ता गलत है, बल्कि दूसरे रास्ते को गलत कहना ही होगा। दूसरे रास्ते को गलत न कहा जाय तो स्वयं को सही कहने की जो शक्ति है, जो बल है, वह टूट जाता है और बिखर जाता है। असल में स्वयं को सही कहना हो, तो दूसरे को गलत कहना अनिवार्य हिस्सा है। उसी की पृष्ठभूमि में स्वयं को सही कहा जा सकता है। तो एक-एक परम्परा का अपना मार्ग था। और विजातीय मार्ग भी थे जो कहीं मिलते नहीं थे। या इसे यों कह लें कहीं कोई चौरास्ते नहीं थे, चौराहे नहीं थे जहाँ विजातीय मार्ग भी मिलते हों। जब सब धाराएँ अपने में बँट कर अलग-अलग बहती थीं तब पुराने का गहन आकर्षण था, ऐसे युग में, ऐसे समय में, महावीर जैसा व्यक्तित्व बड़ा उपयोगी था, सहयोगी था। लेकिन जैसे-जैसे धाराएँ अनेक हुईं, प्रतियोगी हुईं, बहुत हुईं, पुराना संदिग्ध हो गया और नये का मूल्य बढ़ा। नये के लिए भी प्रतियोगी थे। लेकिन पुरानी धारा के खिलाफ जब भी नया प्रतियोगी खड़ा हो जाय और जब सब पुरानी धाराएँ मन को सिर्फ विभ्रम में डालती हों और कुछ तय न हो पाता हो, तो पुरानों में से चुनने की बजाय नये को चुनना मनुष्य के लिए सरल पड़ता है।

कई कारण हैं। —पहला कारण तो यह कि पुरानी धाराओं का तीर्थंकर, पैगम्बर लाखों साल पहले हुआ। उसकी आवाज धुँधली हो गयी है बहुत। नये का पैगम्बर अभी मौजूद होता है, सामने। उसकी आवाज घनी हो जाती है। पुरानी जो परम्परा है वह पुरानी भाषा बोलती है, क्योंकि जब वह निर्मित हुई थी तब की भाषा बोलती है। नया तीर्थंकर, नया बुद्ध, नयी भाषा बोलता है। जो

अभी निर्मित हो रही है। पुराने शब्दों के साथ जो संदेह जुड़ गया उन शब्दों को वह हटा देता है। वह नये शब्दों को लाता है जो एक तरह से क्वांरे हैं, जिन पर भरोसा ज्यादा आसान है। तो नये का आकर्षण क्रमशः बढ़ा, जैसे-जैसे परम्पराएँ साथ हुई, इकट्ठी हुई; और हम करीब-करीब चौराहे पर जीने लगे जहाँ सभी रास्ते मिलते हैं, और हर घर के पास सभी रास्ते टूटते हैं। तो नये का आकर्षण बढ़ा, लेकिन अब नये का आकर्षण भी नहीं है। क्योंकि अब हमें यह भी पता चला कि सब नये, अन्ततः पुराने हो जाते हैं। और जो भी पुराने हैं वे कभी नये थे। हमें यह भी पता चला कि नये और पुराने में शायद शब्दों का फासला है। और नये की बड़ी गति थी। इधर कोई तीन सौ वर्षों से नये ने वही प्रतिष्ठा ले ली थी जो कभी पुराने की थी। जैसे कभी पुराना होना सही होने का प्रमाण था वैसे ही नया होना सही होने का प्रमाण हो गया। इतना ही काफी है बताना कि नयी है बात, और लोग भरोसा करेंगे। जैसे पहले काफी था कि पुरानी है बात और लोग भरोसा करने लगते थे। अब किसी चीज को पुराना कहना अपने हाथ से उसको निंदित करना था। इसलिए प्रत्येक धारा नये होने की चेष्टा में लग गयी। और प्रत्येक धारा ने नये व्यक्ति पैदा किये जिन्होंने नये की बातें की। पुराना समाप्त नहीं हुआ, पुराने रास्ते चलते ही रहे, नये रास्ते भी चल पड़े। उन्हें भी नये चलने वाले मिल गये। लेकिन जब नये की तीव्रता ने पकड़ा तो एक अनूठी घटना घटी।

जैसे पुराना सदा तय करता था कि कितना पुराना है, तो सारे धर्म चेष्टा करते थे प्रमाणित करने की कि उनकी परम्परा से ज्यादा पुरानी कोई परम्परा नहीं है। अगर जैनों से पूछें तो वे कहेंगे कि उनकी परम्परा से ज्यादा पुरानी कोई परम्परा नहीं है। वेद भी बाद के हैं। अगर वेद से पूछें तो वे कहेंगे कि वेद काफी पुराना है। उससे तो पुराने का कोई सवाल ही नहीं है। वे तो प्राचीनतम हैं। उसको पूरा पीछे खींचने की कोशिश की जायेगी, क्योंकि पुराने की प्रतिष्ठा थी। फिर ऐसे ही नये की प्रतिष्ठा जब बननी शुरू हुई तो प्रश्न उठा कितना नया? तो आज से पचास साल पहले अमरीका में, जहाँ कि नये की बहुत पकड़ थी, सबसे ज्यादा नया समाज था। तो दो पीढ़ियाँ थीं, बूढ़ों की पीढ़ी थी, जवानों की पीढ़ी थी आज से पचास साल पहले। लेकिन आज अमरीका में दो पीढ़ियाँ नहीं हैं। आज हालत बहुत अजीब है। आज चालीस साल वाले की अलग पीढ़ी है, तीस साल वाले की अलग पीढ़ी है। बीस साल वाले की अलग पीढ़ी है। पन्द्रह साल वाले की अलग पीढ़ी है। तीस साल वाले कहते हैं, तीस साल के ऊपर भरोसा करना ही मत किसी पर। पच्चीस साल वाले तीस साल वाले पर उतने ही सन्देह

से भरे हैं, कि बूढ़े हो गये। लेकिन उनके पीछे जो बीस साल वाला जवान है वह कह रहा है, यह भी जा चुके। हाई स्कूल के बच्चे भी अब जवानों को बूढ़ा समझ रहे हैं जो आज पच्चीस साल के हैं। वे समझते है, कि तुम गये-गुजरे हो, जा चुकी पीढ़ी। यह कभी सोचा भी न गया था कि इतनी पीढ़ियाँ होंगी। केवल दो पीढ़ी का ख्याल था, कि जवान की पीढ़ी है, बूढ़े की पीढ़ी है। लेकिन यह कल्पना में भी भी नहीं आया था कि जवान की पीढ़ी में भी परतें हो जायेंगी और बीस साल का आदमी पच्चीस साल के आदमी को समझेगा कि वह गया-गुजरा है, आउट आफ डेट है। जब इतने जोर से नये की पकड़ होनी शुरू होगी तो नये का आकर्षण भी खो जायगा। क्योंकि आकर्षण बन भी नहीं पायेगा और नया पुराना हो जायगा। आकर्षण बनने में भी समय लगता है। और धर्म कोई कपड़ों की फैशन की भाँति नहीं है कि आप छः महीने में बदल लें। वह कोई मौसमी फूल के बीज नहीं हैं कि चार महीने पहले लगाया और चार महीने बाद समाप्त कर दिया। धर्म तो ऐसे बट वृक्ष हैं जो हजारों-लाखों साल में तो पूरे हो पाते हैं। और जब ऐसा ख्याल हो कि हर चार दस साल में बदल डालना है तो बट-वृक्ष लगेंगे ही नहीं। तब फिर मौसमी फूल ही लग सकते हैं। नये का आकर्षण भी खोने लगा। यह मैंने इसलिए कहा कि मैं साफ कर सकूँ कि मेरी मनोदशा बिलकुल तीसरी है। न तो मैं मानता हूँ कि महावीर की भाषा कारगर हो सकती है अब, परम्परा की। न मैं मानता हूँ कि नये का ही आग्रह कारगर हो सकता है। दोनों ही गये। अब तो मैं मानता हूँ कि शाश्वत का आग्रह अर्थपूर्ण है। पुराने का भी नहीं, नये का भी नहीं। जो सदा है।

सदा का मतलब कि जो न पुराना होता है, न नया हो सकता है। पुराना नया दोनों ही सामयिक घटनाएँ हैं और धर्म दोनों में काफी परेशान हो लिया। पुराने के साथ बँध के भी परेशान हो लिया और नये के साथ बँध के भी उसने देखा। कृष्णमूर्ति अभी भी नये का आग्रह लिये चले जाते हैं। उसका कारण है कि उनके पास जो पकड़ है वह १६१५ और १६२० के बीच की है, जब कि नये का आकर्षण जमीन पर था। जब कि नया प्रभावी था। वह अभी भी वही कहे चले जाते हैं। लेकिन अब नये को कहने का भी कोई मतलब नहीं है। अब तो इस पृथ्वी पर एक ही सम्भावना है। सब परम्पराएँ इतनी निकट आ गयीं हैं कि अब कोई परम्परा एक्सक्लूसिवली कहे कि मैं ठीक हूँ, तो उस पर सन्देह पैदा होगा। कभी इस बात के कहने से विश्वास आता था कि कोई परम्परा कहती थी कि मैं ठीक हूँ, निरपेक्ष हूँ, एब्सलूट अर्थों में ठीक हूँ—कभी इससे श्रद्धा बनती थी। अब इसी से अश्रद्धा बन जायेगी कि कोई कहे कि मैं बिलकुल निरपेक्ष अर्थों में ठीक हूँ। यह उसके पागल-

पन का सबूत होगा। यह सबूत होगा कि वह आदमी बहुत बुद्धिमान् नहीं है। यह सबूत होगा कि बहुत सोच-विचार वाला नहीं है। यह सबूत होगा कि बहुत मतान्ध है वह, अन्धा है, डॉगमेटिक है। बर्ट्रेण्ड रसेल ने कहीं लिखा है कि मैंने किसी बुद्धिमान् आदमी को कभी बेझिझक बोलते नहीं देखा। बुद्धिमान् में तो झिझक होगी ही, हैजीटेशन होगा ही। सिर्फ बुद्धू बेझिझक बोल सकते हैं। रसेल यह कह रहा है कि सिर्फ अज्ञानी कह सकते हैं कि, बस पूर्ण सत्य यह रहा। ज्ञान के बढ़ने के साथ ऐसी निरपेक्ष घोषणाएँ नहीं हो सकतीं। इस युग में अब कोई एक परम्परा को ठीक कहने का आग्रह करे तो वह उस परम्परा को नुकसान पहुँचाने वाला हो जायगा। ठीक दूसरी बात भी ऐसी ही है। अगर कोई कहे कि जो मैं कह रहा हूँ वह बिलकुल नया है, तो बात बेमानी हो गयी। क्योंकि इतने नये की उद्घोषणा होती है और आखिर में बहुत गहरे में पाया जाता है कि वही है। कितने रूपों में बातें कही जाती हैं, परन्तु रूप को जरा हटाकर देखें तो कपड़े हट जाते हैं और पीछे पाया जाता है, वही है। इसलिए नये की घोषणा भी बहुत अर्थ नहीं रखती। पुराने की घोषणा भी बहुत अर्थ नहीं रखती।

मेरी दृष्टि में भविष्य का जो धर्म है, कल जिस बात का प्रभाव होने वाला है, जिससे लोग मार्ग लेंगे, और जिससे लोग चलेंगे, वह है सनातन का,—इटरनल का आग्रह। हम जो कह रहे हैं वह न नया है, न पुराना है। न वह कभी पुराना होगा और न उसे कभी कोई नया कर सकता है। हाँ, जिन्होंने पुराना कहकर उसे कहा था उनके पास पुराने शब्द थे, जिन्होंने नया कहकर उसे कहा उनके पास नये शब्द हैं। और हम शब्द का आग्रह छोड़ते हैं। इसलिए मैं सभी परम्पराओं के शब्दों का उपयोग करता हूँ, जो शब्द समझ में आ जाय। कभी पुराने की भी बात करता हूँ कि शायद पुराने से किसी को समझ में आ जाय, कभी नये की भी बात करता हूँ कि शायद नये से किसी की समझ में आ जाय। और साथ ही यह भी निरन्तर स्मरण दिलाता रहना चाहता हूँ कि सत्य नया और पुराना नहीं होता।

सत्य आकाश की तरह शाश्वत है। जैसे वृक्ष लगते हैं आकाश में, खिलते हैं, फूल आते हैं वृक्ष गिर जाते हैं। वृक्ष पुराने, बूढ़े हो जाते हैं। वृक्ष बच्चे और जवान होते है। सब कुछ आकाश में ही होता है। एक बीज हमने बोया और अंकुर फूटा, अंकुर बिलकुल नया है, लेकिन जिस आकाश में फूटा, वह आकाश! फिर बड़ा हो गया वृक्ष। फिर जरा-जीर्ण होने लगा। मृत्यु के करीब आ गया वृक्ष। वृक्ष बूढ़ा है, लेकिन आकाश जिसमें वह हुआ है, वह आकाश बूढ़ा है? ऐसे कितने वृक्ष आये और गये, लेकिन आकाश अपनी जगह है,—अछूता, निर्लेप। सत्य तो आकाश जैसा है। शब्द वृक्षों जैसे हैं। वे लगते हैं, अंकुरित होते हैं,

पल्लवित होते हैं, खिल जाते हैं, मुरझाते हैं, गिरते हैं, मरते हैं, जमीन में खो जाते हैं। आकाश अपनी जगह ही खड़ा रहता है ! पुरानों का जोर भी शब्दों पर था और नयों का जोर भी शब्दों पर है। मैं शब्द पर जोर ही नहीं देना चाहता हूँ। मैं तो उस आकाश पर जोर देना चाहता हूँ कि जिसमें शब्द के फूल खिलते हैं, मरते हैं, खोते हैं और आकाश बिलकुल ही अछूता रह जाता है। कहीं कोई रेखा भी नहीं छूट जाती। मेरी दृष्टि में सत्य शाश्वत है—नये पुराने से अतीत, ट्रांसिडेंटल है। हम कुछ भी कहें और कुछ भी करें, हम उसे न नया करते हैं, न हम उसे पुराना कहते हैं। जो भी हम कहेंगे, जो भी हम सोचेंगे, जो भी हम विचार निर्मित करेंगे, वह आयेंगे और जायेंगे। सत्य अपनी जगह खड़ा रहेगा। इसलिए वह भी नासमझ है जो कहता है, मेरे पास बहुत पुराना सत्य है। क्योंकि सत्य पुराना नहीं होता। आकाश पुराना नहीं होता। वह भी उतना ही नासमझ है जो कहता है कि मेरे पास नया सत्य है, मौलिक है। आकाश मौलिक और नया भी नहीं होता।

इस तीसरे तत्त्व, शाश्वत तत्त्व की घोषणा को मैं भविष्य के लिए मार्ग मानता हूँ। क्यों मानता हूँ ? क्योंकि इस तत्त्व की घोषणा, बहुत-सी परम्पराओं के जाल से जो उपद्रव पैदा हो गया है, उसे काटने वाली होगी। तब हम कहेंगे, ठीक है, वे वृक्ष भी खिले थे आकाश में और ये वृक्ष भी खिल रहे हैं आकाश में। अनन्त वृक्ष खिलते हैं आकाश में, इससे आकाश को कोई फर्क नहीं पड़ता। आकाश में बहुत अवकाश है, बहुत स्पेस है। हमारे वृक्ष उसको रिक्त नहीं कर पाते और न भर पाते हैं। हम इस भ्रम में न रहें कि हमारा कोई भी वृक्ष पूरे आकाश को भर देगा। हमारे कोई भी शब्द, हमारी कोई भी धारणाएँ, कोई भी सिद्धान्त सत्य के आकाश को भर नहीं पाते। सदा गुंजाइश है। हजार महावीर पैदा हों तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता, करोड़ महावीर पैदा हों तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। करोड़ बुद्ध पैदा हो जायँ तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। कितने ही बड़े वे वट-वृक्ष हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वटवृक्षों के बड़े होने से आकाश के बड़ेपन को नहीं नापा जाता है। हालाँकि वट-वृक्षों के नीचे जो घास के तिनके हैं उन्हें आकाश का कोई पता नहीं होता, वटवृक्ष का ही पता होता है। और उनके लिए वट-वृक्ष भी इतना बड़ा होता है कि इससे भी बड़ा कुछ हो सकता है, इसकी कल्पना भी सम्भव नहीं है। इस दुर्गम स्थिति में सारी परम्पराएँ एक साथ खड़ी हो गयी हैं और आदमी के मन को एक साथ आकर्षित कर रही हैं चारों तरफ से, सब परम्पराएँ सब तरफ का आकर्षण पैदा कर रही हैं। पुराने हैं, नये हैं, रोज नये पैदा होने वाले विचार हैं, वे सब मनुष्य को खींच रहे हैं। और उन सबके खींचने की वजह से मनुष्य ऐसी स्थिति में है कि वह एकदम किम् कर्तव्य विमूढ़ है। वह

करीब-करीब खड़ा हो गया है। वह कहीं जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। क्योंकि वह कहीं भी कदम बढ़ाये तो सन्देह पैदा होता है। श्रद्धा कहीं भी नहीं आती। सब श्रद्धा पैदा करवाने वाले ही उसको अश्रद्धा की हालत में खड़ा किये दे रहे है।

श्रद्धा तो जिस ढंग से पैदा की जाती थी उसी ढंग से अब भी पैदा की जा रही है। कुरान कहे जा रहा है कि वह ठीक है, धम्मपद कहे जा रहा है कि वह ठीक है। स्वभावत: जो भी कहेगा कि मैं ठीक हूँ, उसे यह भी कहना पड़ता है कि दूसरा गलत है। दूसरे को भी यही कहना पड़ता है कि मैं ठीक हूँ, यही कहना पड़ता है कि दूसरा गलत है। और ऐसी स्थिति में खड़े हुए आदमी को ऐसा लगता है कि सभी गलत है। क्यों ? क्योंकि खुद को ठीक कहने वाला तो एक है, लेकिन उसको गलत कहने वाले पचास हैं। ठीक का दावा एक-एक अपने लिए कर रहा है, और उसके गलत होने का दावा बाकी पचास लोग कर रहे हैं कि वह गलत है। गलत कहे जाने का इतना बड़ा इम्पैक्ट होगा कि जो एक चिल्ला रहा है कि मैं ठीक हूँ, उसकी आवाज खो जायेगी उन पचास में जो कह रहे हैं कि वह गलत है। यद्यपि कि उन सब पचास के साथ भी यही हालत है। क्योंकि वह सब अपने को ही अकेला ठीक कहेंगे, बाकी पचास फिर उनको भी गलत कहेंगे। एक आदमी के सामने पचास लोग कहते है गलत है, और एक आदमी कहता है ठीक है। स्वभावत: वह चलने वाला नहीं है। वह खड़ा हो जायगा।

यह जो मनुष्य की आज की स्थिति है खड़े हो जाने की, उसके पीछे सबकी श्रद्धाएँ और सब श्रद्धाओं की माँग, कि आ जाओ मेरे पास, दिक्कत डाल रही है। उनकी पुरानी आदत है, वह कहे चले जा रहे हैं। यह स्थिति मिट सकती है एक ही तरह से, वह यह कि (एक ऐसा आन्दोलन चाहिए जगत् में, जो यह ठीक है या वह ठीक है, इसका बहुत आग्रह नहीं करता। खड़ा होना गलत है और चलना ठीक है, इसका आग्रह करता है।) इसके लिए इतनी व्यापक दृष्टि की जरूरत है कि जो आदमी जहाँ जाना चाहे, वहाँ कैसे वह ठीक जा सके, यह बताने की सामर्थ्य हो। दुरूह है यह मामला। मुसलमान होना आसान है, ईसाई होना आसान है, जैन होना आसान है। बँधी हुई लीक है, बँधी हुई परम्परा है। एक परम्परा से परिचित होना आसान है। एक युवक आया मेरे पास कोई आठ दिन पहले। वह मुसलमान है, वह संन्यासी होना चाहता है। मैंने सलाह दी, तू संन्यासी हो जा। पर उसने कहा, मेरी गर्दन दबा देंगे वे सारे लोग। मैंने कहा, तू संन्यासी जरूर हो जा, लेकिन 'मुसलमान न रह' यह मैं नहीं कह रहा हूँ। तू मुसलमान रहते हुए संन्यासी हो जा। उसने कहा, क्या फिर मैं गेरुआ वस्त्र पहन मसजिद मे

नमाज पढ़ सकता हूँ ? मैंने कहा पढ़नी ही पड़ेगी। उसने कहा, मैं तो नमाज पढ़ना छोड़ चुका आपको सुनकर। मैं तो ध्यान कर रहा हूँ। मैं तो जाता नहीं मसजिद आज साल भर से, और मुझे अपूर्व आनन्द हुआ है। जाना भी नहीं चाहता। मैंने कहा, जब तक ध्यान तेरा उस जगह न आ जाय कि नमाज और ध्यान में कोई फर्क न रहे, तब तक समझना कि ध्यान अभी पूरा नहीं हुआ। इसे वापस नमाज पढ़ने भेजना ही पड़ेगा मस्जिद में। इसे मसजिद से तोड़ना खतरनाक है। क्योंकि इसे मसजिद से तोड़ कर किसी मन्दिर से नहीं जोड़ा जा सकता है। क्योंकि जिस विधि से हम तोड़ते हैं वही विधि इसको इस भाँति विकृत कर जाती है कि फिर यह किसी मन्दिर से नहीं जुड़ सकता। तो न तो पुराने मन्दिरों के बीच प्रतियोगिता खड़ी करती है, और न नया मन्दिर खड़ा करना है। जो जहाँ जाना चाहे, खड़ा न रहे, जाये।

मेरे सामने जो पर्सपैक्टिव है, परिप्रेक्ष्य है, वह यही है—कि जो भी व्यक्ति, उसकी क्षमता हो, जो उसकी पात्रता हो, जो उसका संस्कार हो, जो उसके खून में प्रवेश कर गया हो, जो सुगमतम हो उसके लिए, उस पर ही मैं उसे गतिमान करता हूँ। तो मेरा कोई धर्म नहीं है और मेरा कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि अब कोई भी रास्ते वाला धर्म, सम्प्रदाय वाला धर्म, भविष्य के लिए नहीं है। सम्प्रदाय का अर्थ है रास्ता। अब कोई भी रास्ते वाला धर्म भविष्य के लिए काम का नहीं है। अब ऐसा धर्म चाहिए जो एक रास्ते का आग्रह न करता हो, जो पूरे चौरास्ते को घेर ले। जो कहे कि सब रास्ते हमारे हैं। तुम चलो भर। तुम जहाँ से भी चलोगे वहीं पहुँचोगे। सब रास्ते वहीं ले जाते हैं। आग्रह यह है कि तुम चलो, खड़े मत रहो। तो कोई नयी धारणा या कोई पर्वत पर नया मार्ग तोड़ने की मेरी उत्सुकता नहीं, मार्ग बहुत हैं। चलने वाला नहीं है। मार्ग ज्यादा और चलने वाले कम हैं। करीब-करीब मार्ग सूने पड़े हैं जिन पर कोई चलने वाला वर्षों से नहीं गुजरा है। कोई राहगीर नहीं आया उन पर। क्योंकि पर्वत पर चढ़ने की जो सम्भावना थी, वही टूट गयी। पर्वत के नीचे इतना विवाद है, इतनी कलह है कि सारी कलह का पूरा का पूरा परिणाम वह प्रत्येक व्यक्ति को थका देने वाला, घबड़ा देने वाला, खड़ा कर देने वाला है। इतनी विवंचना में कोई चल नहीं सकता।

यहाँ एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है, फिर भी मेरी दृष्टि इकलेक्टिक नहीं है। मेरी दृष्टि गांधी जैसी नहीं है कि मैं चार कुरान के वचन चुन लूं और चार गीता के वचन चुन लूं, और कहूँ कि दोनों में एक ही बात है। दोनों में एक बात है नहीं। मैं कहता हूँ कि सब रास्तों से चल कर आदमी वहीं पहुँच जायगा, लेकिन सब रास्ते एक नहीं हैं। रास्ते बिलकुल अलग-अलग हैं। अगर गीता और

कुरान को एक बताने की कोशिश की जाती है तो वह तरकीब है। यह बड़ी मजेदार बात है कि गांधी गीता को पढ़ लेंगे, फिर कुरान को पढ़ लेंगे। कुरान में जो बातें गीता से मेल खाती हैं वह चुन लेंगे, बाकी बातें छोड़ देंगे। फिर बाकी बातें क्या हुईं ? जो मेल नहीं खातीं और जो विपरीत पड़ती हैं वे छोड़ देंगे। पूरे कुरान को गांधी कभी नहीं राजी हो सकते। पूरी गीता को राजी हैं। इसलिए मैं कहता हूँ इकलेक्टिक। पूरे गीता को राजी हैं, फिर गीता के भी समानान्तर कुछ मिलता हो कहीं कुरान में तो उसके लिए राजी हैं। इस राजी होने में कोई कठिनाई नहीं है। इसको तो कोई भी राजी हो जायगा। मैं कहता हूँ कि मैं आपसे बिलकुल राजी हूँ, उतनी दूर तक, जहाँ तक कुरान गीता का अरबी रूपान्तर है, बस। उससे इंचभर ज्यादा नहीं। वह तो कुरानवाला भी राजी हो जाता है। लेकिन यह बहुत मजेदार प्रयोग होगा कि कुरान वाले से आप गीता में चुनवायें कि कौन-कौन-सी बात का मेल है तो आप बिलकुल हैरान हो जायेंगे। जो चीजें वह चुनेगा वह गांधी ने कभी नहीं चुनी। वह बहुत भिन्न चीजें चुनेगा। इसको इकलेक्टिसिज्म कहता हूँ। यह चुनना है, यह पूरे की स्वीकृति नहीं है। स्वीकृति तो हमारी ही है। उससे आप भी मेल खाते हो कहीं, तो आप भी ठीक हो। ठीक तो हमीं हैं अन्ततः। उतनी दूर तक ठीक हो इतनी कहने की हम सहिष्णुता दिखलाते हैं कि जितनी दूर तक आप हमसे मेल खाते हैं यह कोई बहुत सहिष्णुता नहीं है। और यह प्रश्न कोई सहिष्णुता का नहीं है। यह तो आकाश जैसी उदारता की बात है, सहिष्णुता की नहीं है। टालरेंस की नही है। यह नहीं है कि हिन्दू एक मुसलमान को सह जाय, यह नहीं है कि ईसाई एक जैन को सहे। सहने में ही हिंसा भरी हुई है। मैं यह नहीं कहता कि कुरान और गीता एक ही बात कहती हैं। कुरान तो बिलकुल अलग बात कहता है। उसका अपना इन्डीवीजुअल स्वर है। वहीं उसकी महत्ता है। अगर वह भी वही कहता है जो गीता कहती है, तो कुरान दो कौड़ी का हो गया। बाइबिल तो कुछ और ही कहती है, जो न गीता कहती है, न कुरान कहता है। उनके सबके अपने स्वर हैं। महावीर वही नहीं कहते जो बुद्ध कहते हैं, बड़ी भिन्न बात कहते हैं। लेकिन इन भिन्न बातों से भी अन्ततः जहाँ पहुँचा जाता है, वह एक जगह है। इसलिए मेरा जोर मंजिल की एकता पर है, मार्ग की एकता पर नहीं है। मेरा जोर है वह यह है, कि अन्ततः ये सारे मार्ग वहाँ पहुँच जाते है जहाँ कोई भेद नहीं।

ये मार्ग बड़े भिन्न है। और किसी भी आदमी को भूल कर दो मार्गों को एक समझने की चेष्टा में नहीं पड़ना चाहिए। अन्यथा वह किसी पर भी न चल पायेगा। माना कि ये सब नावें उस पार पहुँच जाती है, लेकिन फिर भी दो नावों पर सवार

होने की गलती किसी को भी नहीं करनी चाहिए। अन्यथा नावें पहुँच जायेंगी, दो नावों पर चढ़ने वाला नहीं पहुँचेगा। वह मरेगा, वह डूबेगा कहीं। माना कि सब नावें नावें हैं, फिर भी एक ही नाव पर चढ़ना होता है, पहुँचना हो तो। हाँ, किनारे पर खड़े होकर बात करनी हो कि सब नावें नावें हैं, कोई हर्जा नहीं है। सब नावें एक ही हैं, तो भी कोई हर्जा नहीं। लेकिन यात्रा करने वाले को तो नाव पर कदम रखते ही चुनाव करना पड़ेगा। इस चुनाव के लिए मेरी परम स्वीकृति है सबकी। बहुत कठिन होगा, क्योंकि बड़ी विपरीत घोषणाएँ हैं। एक तरफ महावीर हैं जो चींटी को भी मारने को राजी न होंगे। पैर फूंक कर रखेंगे। दूसरी तरफ तलवार लिये मुहम्मद हैं। तो जो कहता है कि दोनों एक ही बातें करते हैं, वह गलत कहता है। ये दोनों एक बात कह नहीं सकते। ये बातें तो बड़ी भिन्न कहते हैं। और अगर एक बात बताने की कोशिश की गयी तो किसी-न-किसी के साथ अन्याय हो जायगा। या तो मुहम्मद की तलवार छिपानी पड़ेगी और या महावीर का चींटी पर पैर फूंककर रखना भुलाना पड़ेगा। अगर मुहम्मद का मानने वाला चुनेगा तो महावीर से वह हिस्से काट डालेगा जो तलवार के विपरीत जाते होंगे। और महावीर का मानने वाला चुनेगा तो तलवार को अलग कर देगा मुहम्मद से, और सिर्फ वे ही बातें चुन लेगा जो अहिंसा के ताल-मेल में पड़ती हों। बाकी यह अन्याय है। इसलिए मैं गांधी जैसा समन्वयवादी नहीं हूँ। मैं सारे धर्मों के बीच किसी सिंथीसिस और किसी समन्वय की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं तो यह कह रहा हूँ कि सारे धर्म अपने निजी व्यक्तिगत रूप में जैसे हैं वैसे मुझे स्वीकृत हैं, मैं उनमें कोई चुनाव नहीं करता। और मैं यह भी कहता हूँ कि उनके वैसे होने से भी पहुँचने का उपाय है।

सारे धर्मों ने जो अलग-अलग अपने रास्ते बनाये हैं, उन रास्तों के जो भेद हैं, वह रास्तों के भेद हैं। जैसे, मेरे रास्ते पर वृक्ष पड़ते हैं और आपके रास्ते पर पत्थर ही पत्थर है। आप जिस कोने से चढ़ते हैं पहाड़ के, वहाँ पत्थर ही पत्थर हैं और मैं जिस रास्ते से चढ़ता हूँ वहाँ वृक्ष ही वृक्ष हैं। कोई है कि सीधा पहाड़ पर चढ़ता है, बड़ी चढ़ाई है और पसीने से तर बतर हो जाता है; कोई है कि बहुत मद्धिम और घूमते हुए रास्ते से चढ़ता है। रास्ता लम्बा जरूर है लेकिन थकता कभी नहीं, पसीना कभी नहीं आता। निश्चित ही यह लोग अपने-अपने रास्तों की अलग-अलग बात करेंगे। इनके वर्णन बिलकुल अलग होंगे। फिर प्रत्येक के रास्ते पर मिलने वाली कठिनाइयों का हिसाब भी अलग होगा। और प्रत्येक कठिनाई से जूझने की साधना भी अलग होगी। यह सब अलग होगा। अगर हम इन रास्तों की चर्चा को देखें तो हम इनमें शायद ही कोई समानता खोज पायें। और जो

समानता कभी दिखायी पड़ती है वह रास्तों की नहीं है। वह समानता उन वचनों की है जो पहुँचे हुए लोगों ने कहे। वह रास्तों की जरा भी नहीं है। केवल उन बचनों की है, जो शिखर पर पहुँचे लोगों ने कहे हैं। फिर भाषा ही का फर्क रह जाता है, चाहे अरबी का, कि पाली का, कि प्राकृत का, कि संस्कृत का, उन शब्दों में जो मंजिल की घोषणा के लिए कहे गये हैं। बाकी मंजिल के पहले सारे फर्क बहुत वास्तविक हैं। और मैं नहीं कहता कि उनको भुलाने की जरूरत है।

तो मैं कोई नया रास्ता नहीं तोड़ना चाहता। न ही पुराने रास्ते को, बाकी रास्तों के खिलाफ, सही कहना चाहता हूँ। मैं कहना चाहता हूँ कि सभी रास्ते सही हैं, भले ही भिन्न हों। क्योंकि हमारे मन में सही होने का एक ही मतलब होता है कि वह एक से हैं। हमारे मन में एक भाव होता है कि दो चीजें तभी सही हो सकती हैं जब एक-सी हों। एक-सी होना कोई अनिवार्यता नहीं है। सच तो यह है कि दो एक-सी चीजों में अक्सर नकल होगी, सही नहीं होगी। चाहे एक नकल हो, या दोनों ही नकल हो, एक तो पक्की ही नकल होगी। दो बिलकुल ही वास्तविक चीजें, बिलकुल अलग होती हैं। उनका व्यक्तित्व भिन्न होता ही है। इसमें मैं आश्चर्य नहीं मानता कि मुहम्मद और महावीर के मार्ग में भेद है। न होता भेद तो एक चमत्कार था। जो कि बिलकुल अस्वाभाविक है। महावीर की सारी परिस्थितियाँ भिन्न हैं, मुहम्मद की सारी परिस्थितियाँ भिन्न हैं। मुहम्मद को जिन लोगों के साथ काम करना पड़ रहा है वह बिलकुल भिन्न हैं, महावीर को जिनके साथ काम करना पड़ रहा है वह बिलकुल भिन्न हैं। सारी संस्कारगत धारा है मुहम्मद के लोगों की, बिलकुल और है। और महावीर के पास जो धारा है वह बिलकुल और है। यह सब इतना भिन्न है कि इसमें महावीर और मुहम्मद का मार्ग एक नहीं हो सकता। और आज भी सबकी स्थितियाँ भिन्न हैं। उन भिन्न स्थितियों को ही ध्यान में रख कर जाना पड़ता है। तो मैं, न तो कोई नया मार्ग तोड़ने को उत्सुक हूँ, न किसी पुराने मार्ग को, शेष पुराने मार्गों के खिलाफ सही कहने को उत्सुक हूँ।

दो बातें हैं—सभी सही है जो टूटे मार्ग वे, जो आज टूट रहे हैं वे, जो कल टूटेंगे वे भी, जो अभी नहीं टूटे वे भी सही हैं। आदमी खड़ा न रहे, चले। गलत से गलत मार्ग से चलने वाला भी आज नहीं, कल पहुँच जायगा। और सही से सही मार्ग पर खड़ा रहने वाला भी कभी नहीं पहुँच सकता। असली सवाल चलने का है। और जब कोई चलता है तो गलत मार्ग से मुक्त हो जाना अड़चन नहीं है। लेकिन जब कोई खड़ा रह जाता है तो पता ही नहीं चलता कि जहाँ खड़ा है वह सही है कि गलत। चलने से पता चलता है कि सही है या गलत है। अगर आप

किसी भी सिद्धान्त को मान कर बैठ जावें तो कभी पता नहीं चलता है कि वह सही है या गलत। आप उसका प्रयोग करें और चलें और आपको फौरन पता चलता है कि वह सही है या गलत। कोई भी विचार, कर्म बन कर ही सही या गलत होने की कसौटी पर कसा जाता है, अन्यथा कोई कसने का उपाय नहीं है। तो मेरी उत्सुकता है, चलें। और मैं प्रत्येक को उसके मार्ग पर ही सहारा देने को उत्सुक हूँ। स्वभावतः महावीर के लिए यह आसान नहीं था। आज यह आसान है, और रोज आसान होता चला जायगा, क्योंकि आज करीब-करीब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो अपने दो चार छः जन्मों में, दो चार छः धर्मों में पैदा न हो चुका हो। एक-एक आदमी चार-चार छः-छः धर्मों में पैदा हो चुका है। इधर पिछले पाँच सात सौ वर्षों में जैसी बाहरी निकटता बढ़ी है वैसी ही भीतरी आत्मा के आवागमन की निकटता भी बढ़ी है। जो कि स्वाभाविक है, बढ़ेगी ही।

जैसे, उदाहरण के लिए, आज से दो हजार साल पहले कोई ब्राह्मण मरता तो शूद्र के घर में पैदा होना, सौ में निन्यानवे मौके पर सम्भव नहीं था। शूद्र के घर में पैदा नहीं हो सकता था। आत्मा का आवागमन इतना ही कठिन था। क्योंकि आवागमन ही नहीं था। चित्त तो सारे संस्कार लेता है। जिस शूद्र को कभी छुआ नहीं, जिसकी छाया से बचे, जिसकी छाया पड़ गयी, तो स्नान किया, अनन्त खाई रही जिसके और हमारे बीच। मरने के बाद आत्मा वहाँ यात्रा नहीं कर सकती। क्योंकि यात्रा जो चित्त करायेगा वह चित्त बिलकुल ही खिलाफ है। कोई यात्रा नहीं हो सकती थी। इसलिए महावीर के समय तक शायद ही कभी ऐसा मौका होता था कि कोई आदमी कोई गैर धर्म में पैदा हो जाय। यह सम्भव नहीं था। धाराएँ इतनी बँधी थीं, लीकें इतनी साफ थीं कि आप इस जन्म में ही अपने धर्म के भीतर घूमते थे ऐसा नहीं है, आप अगले जन्म में भी उसी धर्म के भीतर घूमते थे। अब यह सम्भव नहीं रहा। अब चीजें जैसे बाहर उदार हो गयी हैं वैसे भीतर भी उदार हो गयी हैं। वह सब चित्त की बात है। आज मुसलमान के साथ बैठ कर खाना खाने में किसी ब्राह्मण को कम तकलीफ होती है और भी कम होती चली जायेगी। जिसको कम नहीं हुई है वह आज का आदमी नहीं है। उसके पास चित्त पाँच सौ साल पुराना है। आज के आदमी को तो बिलकुल कम हो गयी है। आज तो सोचना भी बड़ा बेहूदा मालूम पड़ता है कि इस तरह की बात सोचे। इससे भीतरी आवागमन का भी द्वार खुल गया है, यह ख्याल में ले लेना जरूरी है।

इधर पाँच सौ वर्ष में रोज द्वार खुलता चला गया है। वह जो भीतर का द्वार खुल गया है उसके कारण आज कुछ बातें कही जा सकती हैं। अगर मैंने अपने

पिछले जन्मों में अनेक मार्गों पर घूम कर देखा हो तो मेरे लिए बहुत आसान हो जाता है कि मैं कुछ कह सकूं। अगर आज एक तिब्बती साधक मुझसे पूछता हो तो उससे मैं कुछ कह सकता हूँ। लेकिन तभी कह सकता हूँ जब कि किसी न किसी यात्रा में तिब्बती मूल्य है, तिब्बती जो वातावरण है, उसमें मैं जिया होऊँ; अन्यथा मैं नहीं कह सकता हूँ। बिना अनुभव के कहूँगा तो ऊपरी होगा, बहुत गहरा नहीं हो सकता। जब तक कि मैं किसी जगह से नहीं गुजरा होऊँ तब तक मैं बहुत कुछ नहीं कह सकता। अगर मैंने कभी नमाज नहीं पढ़ी है तो मैं नमाज के लिए कोई सहायता नहीं दे सकता हूँ। और दूंगा तो बहुत ऊपरी होगी। किसी मूल्य की की नहीं होगी। लेकिन अगर मैं किसी भी मार्ग से नमाज से गुजरा हूँ तो मैं सहायता दे सकता हूँ। अगर मैं एक दफा भी गुजरा हूँ तो मैं जानता हूँ कि नमाज से भी वहीं पहुँचा जाता है, जहाँ किसी प्रार्थना से पहुँचा जाता होगा। और तब मैं इकलेक्टिक नहीं हूँ। इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि हिन्दू मुसलमान को एक होना ही चाहिए, इसलिए दोनों ठीक हैं। नहीं, तब मेरे कहने का कारण बहुत और है। तब मैं जानता हूँ कि दोनों की पद्धतियाँ भिन्न हैं, लेकिन जो प्रतीति है भीतर, वह एक है। यह स्थिति आगे भी जो मैं कह रहा हूँ उसके अनुकूल होती चली जायेगी। भविष्य के लिए आने वाले सौ वर्षों में आवागमन तीव्र हो जायगा आत्माओं का, क्योंकि जितने बन्धन बाहर टूटेंगे, उतने भीतर टूट जायेंगे।

यह आप जानकर हैरान होंगे कि जिन्होंने बाहर बन्धन बहुत सख्ती से तय किये थे, उनका आग्रह भी बाहर के बन्धन के लिए नहीं था। भीतर का इन्तजाम था। इसलिए कभी भी इस मुल्क की वर्ण-व्यवस्था को बहुत वैज्ञानिक रूप से समझा नहीं जा सका। जैसा आज हमें लगता है कि कितना अन्याय किया होगा उन लोगों ने कि एक तरफ ब्राह्मण उपनिषद लिख रहा है और दूसरी तरफ वही ब्राह्मण शूद्रों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करने की व्यवस्था कर रहा है। यह संगत नहीं हैं बातें। या तो सब उपनिषद झूठे हैं, जो लिखे नहीं गये कभी, क्योंकि उसी ब्राह्मण से नहीं निकल सकते जिस ब्राह्मण से शूद्र की व्यवस्था निकल रही है। और अगर उससे ही शूद्र की व्यवस्था निकली हो, तो हम जो व्याख्या कर रहे हैं उसमें निश्चित ही कहीं भूल हो गयी है। निकली उसी से है। वही मनु एक तरफ इतनी ऊँची बात कह रहा है जिसका कोई हिसाब नहीं। नीत्शे कहा करता था कि मनु से ज्यादा बुद्धिमान् आदमी पृथ्वी पर नहीं हुआ। लेकिन अगर मनु के वचन हम देखें तो शूद्रों और वर्णों के बीच जितनी अलंघ्य खाइयाँ उसने निर्मित की उतनी किसी और आदमी ने नहीं की। वह अकेला आदमी जो तय कर गया उसको आज भी नहीं हिला पा रहे हैं आप। पाँच हजार साल की धारा पर वह छाया है।

आज भी सारा कानून, सारी व्यवस्था, सारी समझ, सारी बुद्धिमानी, सारी राजनीति उसके खिलाफ लगी हुई है उस पाँच हजार साल पहले मरे हुए आदमी के। लेकिन वह जो व्यवस्था दे गया है उसको हटाना बहुत मुश्किल पड़ रहा है। राजा राममोहन राय से लेकर गांधी तक सारे हिन्दुस्तान के डेढ़ सौ वर्ष के समझदार आदमी मनु के खिलाफ लड़ रहे हैं। और वह एक आदमी, और वह भी पाँच हजार साल पहले हो गया! वह कोई छोटी समझ का आदमी नहीं है। ये सब बचकाने हैं उसके सामने। बिलकुल जुबिनायल हैं। गांधी या राजा राममोहन-राय बिलकुल बचकाने हैं। आज सारी स्थिति विपरीत हो गयी है, फिर भी मनु एकदम हिल नहीं पा रहा है। उसको हिलाना कठिन है। क्योंकि कारण भीतर है।

सारी व्यवस्था ऐसी थी कि एक आदमी इस जन्म में अगर नमाज पढ़ता रहा है तो मनु चाहता है कि वह अगले जन्म में भी नमाज वाले घर में ही पैदा हो। नहीं तो जो काम तीन जन्म में हो सकता है, एक ही परम्परा में पैदा होकर, वह तीस जन्मों में भी नहीं हो सकता। हर बार शृंखला टूट जायेगी और जब भी वह आदमी रास्ता बदलेगा तब फिर अ ब स से शुरू करेगा। पुराने से आगे नहीं जोड़ा जा सकेगा। एक आदमी पिछले जन्म में मुसलमान के घर में था और इस जन्म में हिन्दू के घर में पैदा हो गया, अब वह फिर क ख ग से शुरू कर रहा है। पिछली यात्रा बेकार हो गयी, पुँछ गयी। उसका कोई अर्थ न रहा। वह ऐसा हुआ कि जैसे एक बच्चा एक स्कूल में पढ़ा था छः महीने, फिर निकल आया, फिर दूसरे स्कूल में भर्ती हुआ, फिर पहली क्लास में भर्ती हुआ। फिर छः महीने बाद तीसरे स्कूल में भर्ती हो गया, उन्होंने फिर उसे पहली क्लास में भर्ती कर लिया। वह स्कूल बदलता चला गया। यह शिक्षित कब होगा? मनु का ख्याल था यह, और बड़ा कीमती है, कि उस व्यक्ति को उसी विचार-तरंगों के जगत में वापस पहुँचा दें जहाँ से वह छोड़ रहा है। फिर से शुरू न करना पड़े। जहाँ से छोड़ा वहाँ से शुरू कर सके। और यह तभी हो सकता था जब बहुत सख्ती से व्यवस्था की जाय। इसमें थोड़ी भी ढील-पोल से नहीं चलता। अगर इसमें इतना भी होगा कि कोई हर्जा नहीं है शूद्र से विवाह कर लो। लेकिन मनु ज्यादा बुद्धिमान् है, वह जानता है कि जब शूद्र से विवाह कर सकते हो तब कल शूद्र के घर में गर्भ लेने में कौन सी कठिनाई पड़ेगी? जब शूद्र की लड़की को गर्भ दे सकते हो तो शूद्र की लड़की से गर्भ लेने में कौन-सी अड़चन रह जायेगी? कोई तर्कसंगत अड़चन नहीं रह जायेगी। अगर गर्भ लेने से रोकना है तो गर्भ देने से रोकना पड़ेगा। विवाह पर सख्त पाबन्दी लगा दी। उसने इंच भर हिलने नहीं दिया। क्योंकि यहाँ इंच भर हिल गये तो पीछे की सारी व्यवस्था, वह सारी की सारी

अस्त-व्यस्त हो जायेगी। लेकिन वह अस्त-व्यस्त हो गयी। अब शायद उसे व्यवस्थित करना कठिन पड़ेगा। कठिन क्या, मैं समझता हूँ, असम्भव है। अब हो नहीं सकता। सारी स्थिति ऐसी है, कि अब नहीं हो सकता। अब उन्हें और सूक्ष्म रास्ते खोजने पड़ेंगे, मनु से भी ज्यादा सूक्ष्म। मनु बहुत बुद्धिमान् था, लेकिन व्यवस्था बहुत स्थूल थी। इसलिए स्थूल व्यवस्था आदमी के लिए अन्यायपूर्ण हो जायेगी। बहुत बाह्य, बाहर से रोकी थी, भीतर को सम्हालने के लिए। जो आज नहीं कल कठिन हो ही जायेगी—स्टिफ जैकिट बैठ गयी ऊपर, वह लोहे की हो गयी।

आज हमें सूक्ष्म तल पर प्रयोग करने पड़ेंगे। सूक्ष्म तल पर प्रयोग करने का मतलब यह है कि आज हमें प्रार्थना और नमाज को इतना तरल बनाना पड़ेगा कि जिसने पिछले जन्म में नमाज छोड़ी हो वह इस जन्म में अगर प्रार्थना भी शुरू करे तो वहाँ से शुरू कर सके जहाँ से नमाज छोड़ी। इसका मतलब हुआ कि प्रार्थना और नमाज इतनी तरल, लिक्विड होनी चाहिए कि प्रार्थना से नमाज शुरू की जा सके, नमाज से प्रार्थना शुरू की जा सके। मन्दिर के घण्टे सुनते-सुनते कान ऐसे न हो जायँ कि किसी दिन सुबह अजान की आवाज अजनबी मालूम पड़े। मन्दिर के घण्टों और अजान की आवाज में कहीं कोई आन्तरिक तालमेल बनाना पड़ेगा। और इस बनाने में कोई कठिनाई नही है। यह बिलकुल बनाया जा सकता है। इसलिए भविष्य के लिए एक बिलकुल नये धर्म की, नयी धार्मिकता की, न्यु रिलीजसनेस, नया धर्म नहीं कहना चाहिए, नयी धार्मिकता की जरूरत पड़ेगी। मनु का सारा इन्तजाम टूट गया। बुद्ध महावीर की सारी परम्पराएँ विशृंखल हो गयीं। उन्हीं आधारों पर कोई नये प्रयोग करना चाहेगा तो वे मजबूरी में टूट जायेंगी। गुरजिएफ ने बहुत कोशिश की, वह टूट गया। कृष्णमूर्ति चालीस साल से मेहनत करते हैं, कुछ बनता नहीं। सारी स्थिति अन्यथा हो गयी। इस अन्यथा स्थिति में बिलकुल ही एक नयी धारणा की कल्पना है।

धारणा नयी इस अर्थ में, जैसी कि हमने कभी प्रयोग ही नहीं की। एक तरल धर्म की धारणा है। सब धर्मों के, वे जैसे हैं वैसे ही, सही होने की धारणा। दृष्टि मंजिल पर [illegible] का। कहीं भी कोई चले, और हर दो रास्तों के बीच इतनी निकटता कि किसी भी रास्ते से दूसरा रास्ता शुरू हो सके। इन रास्तों के बीच इतना फासला नहीं कि एक रास्ते पर चलने वाला जब दूसरे पर शुरू करे तो उसे दरवाजे पर आना पड़े वापस। नहीं, वह जहाँ से दूसरे रास्ते से हटे, वहीं से दूसरे रास्ते से मिल जाय। जिनको कहना चाहिए लिंक रोड्स, रास्तों को जोड़ने वाली शृंखला, कड़ियाँ। मंजिल से जोड़ने वाले रास्ते सदा से हैं। दो रास्तों को

जोड़ने वाली कड़ियाँ सदा से नहीं हैं। मंजिल तक जाने की तो कोई कठिनाई नहीं है। कोई भी एक रास्ते को पकड़े, मंजिल तक पहुँच जायगा। लेकिन अब ऐसा है कि एक रास्ते पर शायद ही कोई पूरा चल पाये। जिन्दगी रोज अस्त-व्यस्त होती रहेगी। भौतिक अर्थों में भी और मानसिक अर्थों में भी अस्त-व्यस्त होती रहेगी। एक आदमी हिन्दू घर में पैदा होगा, हिन्दू गाँव में बड़ा होगा और फिर जिन्दगी हो सकती है वह योरोप में बिताये। एक आदमी अमरीका में पैदा होगा और हिन्दुस्तान के जंगल में जिन्दगी बितायेगा। लन्दन में बड़ा होगा, वियतनाम के गाँव में जियेगा। यह रोज होता जायगा। भौतिक अर्थों में भी रोज वातावरण बदलेगा और आन्तरिक अर्थों में भी इतना ही वातावरण बदलेगा। यह बदलाहट इतनी ज्यादा होती जायेगी कि अब हमें लिंक्स बनानी पड़ेंगी, सब रास्तों के बीच। कुरान और गीता एक नहीं है, लेकिन कुरान और गीता के बीच एक कड़ी बाँधी जा जा सकती है। तो मैं एक ऐसे संन्यासियों का जाल भी फैलाना चाहता हूँ जो कड़ियाँ बन जायँ। मसजिद में नमाज भी पढ़ें, चर्च में भी प्रार्थना करें, और मन्दिर में भी गीत गायें। महावीर के रास्ते पर भी चलें, बुद्ध की साधना में भी उतरें, सिखों के पन्थ पर भी प्रयोग करें और लिंक निर्मित करें।—ऐसे व्यक्तियों का जीवित जाल, जो लिंक बन जाय! और ऐसी एक धार्मिक अवधारणा कि सब धर्म भिन्न होते हुए एक हैं! अभिन्न होकर एक नहीं है, बिलकुल भिन्न होते हुए, अपनी-अपनी निजता में भिन्न होते हुए एक है। एक, क्योंकि एक जगह पहुँचाते हैं। एक, क्योंकि परमात्मा की तरफ चलाते हैं।

तो मेरा काम कुछ तीसरी तरह का है। और वैसा काम कभी हुआ नहीं। कुछ छोटे-छोटे कभी प्रयोग किये गये, बहुत छोटे। लेकिन सदा असफल हुए। रामकृष्ण ने थोड़ी मेहनत की। पर वह प्रयोग भी बहुत पुराने नहीं हैं, इधर बस दो सौ वर्ष के बीच प्राथमिक कदम उठाये गये। रामकृष्ण की मेहनत थी, लेकिन खो गयी। विवेकानन्द ने उसे फिर वापस हिन्दू रंग दे दिया पूरा का पूरा। नानक ने कोशिश की थी पाँच सौ वर्ष पहले, और थोड़ी पीछे भी कोशिश हुई, लेकिन वह भी खो गयी। नानक ने गुरु ग्रन्थ में सारे हिन्दू, मुसलमान संतों की वाणी इकट्ठी की। नानक गीत गाते, तो मर्दाना—एक मुसलमान तंबूरा बजाता। कभी किसी दूसरे को तम्बूरा बजाने नहीं दिया उन्होंने। उन्होंने कहा कि गीत हिन्दू गाता हो तो मुसलमान तंबूरा तो बजाये। गीत और तम्बूरा कहीं तो एक हो जाय। मक्का और मदीना की यात्रा की, मस्जिदों में नमाज पढ़ी नानक ने, पर खो गयीं। तत्काल सारी चीज को इकट्ठी करके नया पंथ खड़ा हो गया। और भी सूफी फकीरों ने कुछ मेहनत की। लेकिन सारी मेहनत

प्राथमिक ही रही, वह अभी तक बन नहीं पायी। उसके दो कारण थे। युग भी पूरा नहीं निर्मित हुआ था। लेकिन अब युग पूरा निर्मित हुआ जा रहा है। और अब एक बड़े पैमाने पर श्रम किया जा सकता है।

मेरी दिशा बिलकुल तीसरी है। न पुराने को दोहराना है, न नये की कोई बात है। पुराने और नये में, सबमें जो है, उस पर चलने का आग्रह है। कैसे भी चलें, उसकी स्वतन्त्रता है।

प्रश्न : आचार्य जी, जिस शाश्वत की बात, जिस सनातन की बात आपने की है क्या उसका बोध--और सांकेतिक में भी आज आप सारी बात कर रहे हैं अथवा आज की परिस्थितियों में उस शाश्वतता वाली बात का--बोध होता है ?

उत्तर : शाश्वत का बोध सभी को हुआ है। बोध में कहीं कोई अड़चन नहीं है। बोध की अभिव्यक्ति में अड़चन पड़ती है। शाश्वत का बोध महावीर को भी है, बुद्ध को भी है, लेकिन महावीर पुराने की भाषा में उस शाश्वत के बोध को अभिव्यक्त करते हैं; बुद्ध नये की भाषा में उस शाश्वत को अभिव्यक्त करते हैं। मैं उसे शाश्वत की ही भाषा में अभिव्यक्त करना चाहता हूँ। और जो आप पूछते हैं कि क्या सात सौ वर्ष पहले मुझे हो गया था ? करीब-करीब हो गया था, परन्तु अभिव्यक्ति तो आज ही दूँगा। क्योंकि सात सौ साल पहले भी जो जाना हो, वह भी जब आज कहा जायगा, तो जानने में अन्तर नहीं पड़ेगा, कहने में बहुत अन्तर पड़ेगा। सात सौ साल पहले यही नहीं कहा जा सकता था, कोई कारण ही नहीं था कहने का। स्थिति करीब-करीब ऐसी है जैसे कभी वर्षा में इन्द्रधनुष बन जाता है।

यह बहुत मजेदार घटना है। आप जहाँ खड़े होते हैं वहाँ से इन्द्रधनुष दिखायी पड़ता है। इन्द्रधनुष तीन चीजों पर निर्भर होता है। वर्षा के कण, पानी के कण, होने चाहिए हवा में, भाप होनी चाहिए हवा में। उन कणों को या भाप को काटने वाली सूरज की किरणें एक विशेष कोण पर होनी चाहिए। और आप एक खास जगह खड़े होने चाहिए। अगर आप उस जगह से हट जायें तो इन्द्रधनुष खो जायगा। इन्द्रधनुष के बनाने में सिर्फ सूरज की किरणें और पानी की बूँदें ही काम नहीं करती हैं, आपका खास जगह खड़ा होना भी काम करता है। सिर्फ सूरज की किरणें और पानी नहीं बनाते इन्द्रधनुष को, आपकी आँख खास जगह से देख कर भी उतना ही हिस्सा बटाती है उसके निर्माण में। यानी सूरज के कांस्टीटुएन्ट्स एलीमेंट्स जो हैं, उनमें आप भी एक हैं। तीन में से कोई भी हट

जाय तो धनुष खो जायगा। तो जब भी सत्य अभिव्यक्त होता है तब भी तीन चीजें होती हैं। सत्य की अनुभूति होती है। वह न हो तब तो सत्य की अभिव्यक्ति नहीं होती। सूरज न निकला हो तो कोई इन्द्रधनुष बनने वाला नहीं है, आप कहीं भी खड़े हो जायँ और वर्षा के कण कुछ भी करें। तो सूर्य की तरह तो सत्य की अनुभूति अनिवार्य है। लेकिन सत्य की अनुभूति हो, सत्य को सुनने वाला भी मौजूद हो, लेकिन बोलने वाला ठीक कोण पर न हो तो नहीं बोला जा सकता। जैसा कि मेहर बाबा को मैं मानता हूँ। वह कभी उस ठीक कोण पर नहीं खड़े हो पाये जहाँ से उनकी अनुभूति और सुनने वाले के बीच इन्द्रधनुष बन जाता। बहुत-से फकीर मौन रह गये। मौन रहने का कारण है। वे भी कोण पर नहीं खड़े हो पाये ठीक, जहाँ से कि अभिव्यक्ति का कोण बन सके। वह भी तो अनिवार्य है। नहीं तो सत्य की अनुभूति एक तरफ रह जायेगी, सुनने वाला एक तरफ रह जायगा, यदि बोलने वाला मौजूद नहीं हो ठीक जगह पर। लेकिन बोलने वाला भी ठीक जगह पर हो, बोलने में समर्थ हो, लेकिन सुनने वाला,—वह भी तो कांस्टिट्यूएंट है! सात सौ साल पहले जिससे मैं बोलता वह भी मेरे बोलने में हिस्सा होता। इसलिए मैं यही नहीं बोल सकता जो मैं आपसे बोलता हूँ। और आप यहाँ न बैठे हों तो भी यही नहीं बोल सकूँगा। क्योंकि आप भी, जो मैं बोल रहा हूँ, उसमें उतने ही अनिवार्य हिस्से हैं। आपके बिना भी नहीं बोला जा सकता। ये तीनों चीजें जब एक निश्चित ट्यूनिंग पर आती हैं, एक निश्चित ध्वनि-तरंग पर मेल खाती हैं, तब अभिव्यक्ति हो पाती है। इसमें जरा सी भी चूक हुई कि सब खो जाता है। इन्द्रधनुष एकदम बिखर जाता है। सूरज फिर कुछ नहीं करता। पानी की बूँदें कुछ नहीं कर सकती। एक भी चीज कहीं से हिल गयी कि इन्द्रधनुष तत्काल खो जाता है।

सत्य की अभिव्यक्ति तो वह 'रेनबो एक्जिस्टेंस' है। वह बिलकुल ही इन्द्रधनुष की भाँति है। पल-पल खोने को तत्पर है। जरा-सा इधर-उधर चूके कि वह खो जायेगी। सुनने वाला जरा-सा चूका, इन्द्रधनुष खो जायगा। बोलने वाला जरा-सा चूका कि बोलना व्यर्थ हो जायगा। इसलिए सात सौ साल की बात तो दूर है सात दिन पहले भी आपसे मैं यही नहीं कह सकता था, और सात दिन बाद भी यही नहीं कह सकूँगा। क्योंकि सब बदल जायगा। सूरज नहीं बदलेगा, वह जलता रहेगा। लेकिन सूरज के अलावा, सत्य की अनुभूति के अलावा, वह जो दो और अनिवार्य तत्त्व हैं—सुनने वाला और बोलने वाला,—वह दोनों बदल जायेंगे। इसलिए बोध तो सात सौ साल पहले का है, लेकिन अभिव्यक्ति तो आज की है। आज की भी नहीं कहनी चाहिए, अभी की। कल

भी जरूरी नहीं है कि ऐसी ही हो। कठिन है कि ऐसी ही हो, उसमें बदलाहट होती ही जायेगी।

प्रश्न : आत्मा जब शरीर छोड़ देती है और दूसरा शरीर धारण नहीं करती है उस बीच के समयातीत अन्तराल में जो घटित होता है उसका, तथा जहाँ वह विचरण करती है उस वातावरण के वर्णन की कोई सम्भावना हो सकती है ? और इसके साथ जिस प्रसंग में आपने आत्मा का अपनी मर्जी से जन्म लेने की स्वतन्त्रता का जिक्र किया है, तो क्या उसे जब चाहे शरीर छोड़ने अथवा न छोड़ने की भी स्वतन्त्रता है ?

उत्तर : पहली तो बात, शरीर छोड़ने के बाद और नया शरीर ग्रहण करने के पहले जो अन्तराल का क्षण है, अन्तराल का काल है, उसके सम्बन्ध में दो-तीन बातें समझें तो ही प्रश्न समझ में आ सके। एक तो यह कि उस क्षण जो भी अनुभव होते हैं वे स्वप्नवत् है, ड्रीम लाइक है। इसलिए जब होते हैं तो बिलकुल वास्तविक होते हैं, लेकिन जब आप याद करते हैं तब सपने जैसे हो जाते हैं। स्वप्नवत् इसलिए हैं वे अनुभव, कि इन्द्रियों का उपयोग नहीं होता। आपके यथार्थ का जो बोध है, यथार्थ की जो आपकी प्रतीति है, वह इन्द्रियों के माध्यम से है, शरीर के माध्यम से है। अगर मैं देखता हूँ कि आप दिखायी पड़ते हैं, पर छूता हूँ तो छूने में नहीं आते तो मैं कहता हूँ कि फेंटम हैं। हैं नहीं आप यहाँ। यह टेबुल मैं छूता हूँ और छूने में नहीं आती और हाथ मेरा आर-पार चला जाता है तो मैं कहता हूँ, झूठ है। मैं किसी भ्रम में पड़ा हुआ हूँ। कोई हेलुसिनेशन है। आपके यथार्थ की कसौटी आपके इन्द्रियों के प्रमाण हैं। तो एक शरीर छोड़ने के बाद और दूसरा शरीर लेने के बीच इन्द्रियाँ तो आपके पास नहीं होतीं, शरीर आपके पास नहीं होता। तब जो भी आपको प्रतीतियाँ होती हैं, वह बिलकुल स्वप्नवत् हैं—जैसे आप स्वप्न देख रहे हैं। जब आप स्वप्न देखते हैं तो स्वप्न बिलकुल ही यथार्थ मालूम देता है, स्वप्न में कभी सन्देह नहीं आता। यह बहुत मजे की बात है। यथार्थ में तो कभी सन्देह आ जाता है। स्वप्न मे कभी सन्देह नहीं आता। स्वप्न बहुत श्रद्धावान् हैं। यथार्थ में कभी शुबाह भी हो जाता है कि दिखायी पड़ रहा है वह सच में है या नहीं ? लेकिन स्वप्न में ऐसा सन्देह कभी नहीं होता कि जो दिखायी पड़ रहा है वह सच में है या नहीं। क्यों ? क्योंकि स्वप्न जरा से सन्देह को भी सह नहीं पायेगा, टूट जायगा, बिखर जायगा। यह स्वप्न इतनी नाजुक घटना है कि इतना-सा सन्देह ही उसकी मौत के लिए काफी है। इतना ही ख्याल आ जाय कि कहीं ये स्वप्न तो नहीं हैं, कि स्वप्न टूट गया। या आप समझिये कि आप जाग गये। तो स्वप्न के होने के लिए अनिवार्य है कि

सन्देह तो कण भर भी न हो। कण भर सन्देह भी, बड़े से बड़े, प्रगाढ़ से प्रगाढ़ स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर जायगा। तिरोहित कर देगा।

स्वप्न मे कभी पता नहीं चलता कि जो हो रहा है, क्या वह सचमुच हो रहा है ? यही लगता है कि बिलकुल हो रहा है। इसका यह भी मतलब हुआ कि स्वप्न जब होता है तब यथार्थ से ज्यादा यथार्थ मालूम पड़ता है। यथार्थ कभी इतना यथार्थ मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि यथार्थ मे सन्देह की सुविधा है। स्वप्न तो अति यथार्थ होता है। इतना अति यथार्थ होता है कि स्वप्न के दो यथार्थ मे विरोध भी हो, तो विरोध दिखायी नही पड़ता। जैसे एक आदमी चला आ रहा है। वह अचानक कुत्ता हो जाता है। और आपके मन मे यह ख्याल भी नहीं आता कि यह कैसे हो सकता है। अभी आदमी था, अभी कुत्ता हो गया ! नही, यह भी ख्याल मे नही आता कि यह कैसे हो सकता है। —बस हो गया और हो सकता है। इसमे कहीं सन्देह नहीं है। जागने पर आप सोच सकते है कि यह क्या गड़बड़ हुई लेकिन स्वप्न में कभी नहीं सोच सकते। स्वप्न मे यह बिलकुल ही रिजनेबल है, उसमे कहीं कोई असंगति नही है। बिलकुल ठीक है। एक आदमी अभी मित्र था और एकदम बन्दूक तान कर खड़ा हो गया। तो आपके मन मे कहीं ऐसा सपने मे नहीं आता कि अरे, मित्र होकर बन्दूक तानते हो ? इसमे कोई असंगति नही है। स्वप्न मे असंगति होती ही नही। स्वप्न मे सब असंगत भी संगत है। अगर जरा-सा शक, कि स्वप्न बिखर जायगा। लेकिन जागने के बाद ? जागने के बाद सब खो जाता है। कभी ख्याल न किया होगा कि जाग कर ज्यादा से ज्यादा घण्टे भर पहले का ही सपना याद किया जा सकता है, इससे ज्यादा नही। आमतौर से तो पाँच सात मिनट मे खोने लगता है लेकिन ज्यादा से ज्यादा, बहुत ही कल्पनाशील हो वह भी एक घण्टे से ज्यादा स्वप्न की स्मृति को नहीं रख सकता। नहीं तो आपके पास सपने की स्मृति इतनी हो जाये कि आप जी न सकें। घण्टे भर के बाद जागने के स्वप्न तिरोहित हो जाते है। आपका मन स्वप्न के धुएँ से बिलकुल मुक्त हो जाता है।

ठीक ऐसे ही दो शरीरों के बीच का जो अन्तराल का क्षण होता है, उसमे जो भी होता है, वह बिलकुल ही यथार्थ लगता है। इतना यथार्थ, जितना यथार्थ हमारी आखों और इन्द्रियों से कभी हम नहीं जानते। इसलिए देवताओं के सुख का कोई अन्त नहीं ! क्योंकि अप्सराएँ जैसी यथार्थ उन्हें होती है, इन्द्रियों से स्त्रियाँ वैसी यथार्थ कभी नही होती है। इसलिए प्रेतों के दुख का अन्त नहीं ! क्योंकि जैसे ही दुख उन पर टूटते हैं, ऐसे ही यथार्थ दुख आप पर कभी नहीं टूट सकते। तो जिन्हें हम नरक और स्वर्ग कहते हैं, वह बहुत प्रगाढ़ स्वप्न अवस्थाएँ

हैं। बहुत प्रगाढ़ ! जैसी आग नरक में जलती है वैसी आग आप यहाँ नहीं जला सकते। उतनी यथार्थ आग नहीं जला सकते। हालाँकि बड़ी इनकंसिस्टेंट आग है। कभी आपने देखा है कि नरक की आग का जो-जो वर्णन है, उसमें यह बात है कि आग में जलाये जाते हैं, जलते नहीं। मगर यह इनकंसिस्टेंसी ख्याल में नहीं आती कि आग में जलाया जा रहा हूँ, आग भयंकर है, तपन सही नहीं जाती और जल बिलकुल नहीं रहा हूँ। मगर यह इनकंसिस्टेंसी बाद में ख्याल आती है। उस वक्त ख्याल में नहीं आती।

दो शरीरों के बीच का जो अन्तराल है उसमें दो तरह की आत्माएँ हैं—एक तो बहुत बुरी आत्माएँ हैं, जिनके लिए गर्भ मिलने में वक्त लगेगा। उनको मैं प्रेत कहता हूँ। दूसरी भली आत्माएँ, जिन्हें गर्भ मिलने में देर लगेगी, उनके लिए योग्य गर्भ चाहिए, उन्हें मैं देव कहता हूँ। इन दोनों में बुनियादी कोई भेद नहीं है, व्यक्तित्व-भेद है। चरित्रगत भेद है, चित्तगत भेद है। योनि में कोई भेद नहीं है। अनुभव दोनों के भिन्न होंगे। बुरी आत्माएँ बीच के उस अन्तराल से इतने दुखद अनुभव लेकर लौटती हैं, उनकी ही स्मृति का फल नरक है। जो-जो उस स्मृति को दे सके हैं लौट कर; उन्होंने ही नरक की स्थिति साफ करवायी है। बिलकुल ड्रीम लैंड है, कहीं है नहीं। लेकिन जो वहाँ हो आया है वह कहता है यह जो आग है उसके मुकाबले कुछ भी नहीं है जो मैंने देखी। यहाँ जो घृणा और हिंसा है वह कुछ भी नहीं है जो मैं देख कर चला आया हूँ। स्वर्ग का अनुभव है, वह भी ऐसा ही अनुभव है। सुखद सपनों का और दुखद सपनों का भेद है। वह पूरा का पूरा ड्रीम पीरिएड है।

यह बहुत तात्त्विक है, और समझने की बात है कि वह बिलकुल ही स्वप्न है। यह हम समझ सकते हैं, क्योंकि हम भी रोज सपना देख रहे हैं। सपना आप तभी देखते हैं जब आपके शरीर की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। एक गहरे अर्थ में आपका सम्बन्ध टूट जाता है तो आप सपने में चले जाते हैं। सपने भी रोज ही दो तरह के देखते हैं—स्वर्ग और नरक के,—या तो मिश्रित होते हैं,—कभी स्वर्ग, कभी नरक। या कुछ लोग नरक के ही देखते हैं, कुछ लोग स्वर्ग के ही देखते हैं। कभी सोचें कि आपने सपना रात आठ घण्टा देखा। अगर इसको आठ साल लम्बा कर दिया जाय तो आपको कभी पता नहीं चलेगा। क्योंकि टाइम का बोध नहीं रह जाता। वह जो घड़ी बीतती है, उस घड़ी का कोई स्पष्ट बोध नहीं रह जाता। लेकिन उस घड़ी का बोध पिछले जन्म के शरीर और इस जन्म के शरीर के बीच पड़े हुए परिवर्तनों से नापा जा सकता है। पर वह अनुमान है। खुद उसके भीतर समय का कोई बोध नहीं है। और इसीलिए, जैसे क्रिश्चिएनिटी ने कहा कि नरक

सदा के लिए है। वह भी ऐसे जीवों की स्मृति के आधार पर है जिन्होंने बड़ा लम्बा सपना देखा। इतना लम्बा सपना कि जब वे लौटे तो उन्हें पिछले जन्म के शरीर के और इस शरीर के बीच कोई सम्बन्ध स्मरण न रहा। इतना लम्बा हो गया। बतलाया कि वह नरक तो अनन्त है, उसमें से निकलना मुश्किल है। अच्छी आत्माएँ सुखद सपने देखती हैं, बुरी आत्माएँ दुखद सपने देखती हैं। सपनों से ही पीड़ित और दुखी होती हैं।

तिब्बत में जब आदमी मरता है, तो उसको मरते वक्त जो सुना देते हैं वह इसी के लिए है। ड्रीम सीक्वेंस पैदा करने के लिए है। आदमी मर रहा है तो वह उसको कहते हैं कि अब तू यह देखना शुरू कर। सारा का सारा वातावरण तैयार करते हैं। यह मजे की बात है, लेकिन वैज्ञानिक है। सपने बाहर से पैदा करवाये जा सकते हैं। जैसे रात आप सो रहे हैं। आपके पैर के पास अगर गीला पानी या भीगा हुआ कपड़ा घुमाया जाय तो आपमें एक तरह का सपना पैदा होगा। हीटर से पैर में थोड़ी गर्मी दी जाय तो दूसरे तरह का सपना पैदा होगा। अगर ठण्डक दी गयी पैर में तो शायद आप सपना देखें कि वर्षा हो रही है, शायद सपना देखें कि बर्फ पर चल रहे हैं। गर्म पैर किये गये तो शायद सपना देखें रेगिस्तान में चले जा रहे हैं। तपती हुई रेत है, सूरज जल रहा है, पसीने से लथपथ हैं। आपके बाहर से सपने पैदा किये जा सकते हैं। और बहुत-से सपने आपके बाहर ही से पैदा होते हैं। रात छाती पर हाथ रख गया जोर से तो सपना आता है कि कोई छाती पर चढ़ा हुआ बैठा है,—आपका ही हाथ रखा हुआ है।

ठीक एक शरीर छोड़ते वक्त, वह जो सपने का लम्बा काल आ रहा है आगे जिसमें आत्मा नये शरीर में शायद जाय, न जाय, जो वक्त बीतेगा बीच में, उसका सीक्वेंस पैदा करवाने की तिब्बत में साधना विकसित की गयी है। उसको वह बार्डो कहते हैं। पूरा इन्तजाम करेंगे, उसका सपना पैदा करेंगे। उसमें जो-जो शुभ वृत्तियाँ रही हैं उसकी जिन्दगी में उन सबको उभार देंगे। जिन्दगी भर की उनकी व्यवस्था करने की कोशिश करेंगे कि मरते वक्त वह उभारी जा सके।

जैसा मैंने कहा कि सुबह उठ कर घण्टे भर तक आपको सपना याद रहता है। ऐसा ही नये जन्म पर कोई छः महीने तक, छः महीने की उम्र तक, करीब-करीब सब याद रहता है। फिर धीरे-धीरे खोता चला जाता है। जो बहुत कल्पनाशील है, या बहुत संवेदनशील हैं, वह थोड़ा कुछ ज्यादा याद रखते हैं। जिन्होंने अगर किसी तरह की जागरूकता के प्रयोग किये हैं पिछले जन्म में, तो वह बहुत देर तक याद रख ले सकते हैं। जैसा सुबह एक घण्टे तक सपना याददाश्त में घूमता रहता है, धुँए की तरह आपके आसपास मंडराता रहता है, ऐसे ही रात सोने के घंटे भर पहले

ही आपके ऊपर स्वप्न की छाया पड़नी शुरू हो जाती है। ऐसे ही मरने के छः महीने पहले आपके ऊपर मौत की छाया पड़नी शुरू हो जाती है। इसलिए छः महीने के भीतर मौत प्रीडिक्टेबल है। छः महीने पहले मौत की छाया पड़नी शुरू हो जाती है, तैयारी शुरू हो जाती है। जैसे रात में नींद के एक घण्टे पहले तैयारी शुरू हो जाती है। इसलिए सोने के पहले जो घण्टे भर का वक्त है, वह बहुत सजेस्टिबल है। उससे ज्यादा सजेस्टिबल कोई वक्त नहीं है। क्योंकि उस वक्त आपको शक होता है कि आप जागे हुए हैं, आप पर नींद की छाया पड़नी शुरू हो गयी होती है। इसलिए दुनिया के सारे धर्मों ने सोने के वक्त घण्टे भर, और सुबह जागने के बाद घण्टे भर प्रार्थना का समय तय किया है। सध्या काल !

संध्याकाल का मतलब सूरज जब डूबता है, उगता है, तब नहीं। सध्याकाल का मतलब है जागने से जब आप नींद में जाते हैं, तो बीच का समय। सुबह जब आप नींद से टूट कर जागने में आते हैं तब बीच का समय सध्या है। वह जो मिडिल पीरियड है, उसका नाम है सध्या। सूरज से कोई लेना-देना नहीं है। वह तो बँध गया सूरज के साथ जब एक जमाना ऐसा था कि सूरज का डूबना हमारा नींद का वक्त था और सूरज का उगना हमारे जागने का वक्त था। तो एसोसिएशन हो गया था और ख्याल में आ गया कि सूरज जब डूब रहा है तो सध्या और सूरज जब उग रहा है तब सध्या। लेकिन अब सध्या का वह ख्याल छोड़ देना चाहिए। क्योंकि अब कोई सूरज के डूबने के साथ सोता नहीं और सूरज के उगने के साथ उठता नहीं। जब आप सोते हैं उसके घण्टे भर पहले सध्या, और जब आप उठते हैं उससे घण्टे भर बाद सध्या। सध्या का मतलब धुंधला क्षण— दो स्थितियों का बीच।

कबीर ने अपनी भाषा को सध्या-भाषा कहा है। कबीर कहता है कि न तो हम सोये हुए बोल रहे हैं, न हम जागे हुए बोल रहे हैं। हम बीच में हैं। हम ऐसी मुसीबत में हैं कि हम तुम्हारे बीच से भी नहीं बोल रहे, हम तुम्हारे बाहर से भी नहीं बोल रहे। बीच में खड़े हैं, बाउन्ड्री लैण्ड पर। वहाँ, जहाँ से हमें वह दिखायी पड़ता है जो आँखों से दिखायी नहीं पड़ता, और जहाँ से हमें वह भी दिखायी पड़ रहा है जो आँखों से दिखायी पड़ रहा है। देहरी पर खड़े हैं। तो हम जो बोल रहे हैं उसमें वह भी है जो नहीं बोला जा सकता है, और वह भी है जो बोला जा सकता है। इसलिए हमारी भाषा सध्या-भाषा है। इसके अर्थ को तुम जरा सम्हाल कर निकालना।

यह जो सुबह का एक घण्टे का वक्त है, और साँझ सोने के पहले भी घण्टे भर का वक्त है, यह बहुत मूल्यवान है। ठीक ऐसे ही छः महीने जन्म के बाद

वक्त, और छ: महीने मरने के पहले का वक्त है। लेकिन जो लोग रात के घण्टे भर का और सुबह के घण्टे भर का समय का उपयोग नहीं जानते, वे शुरू के छः महीने का और बाद के छः महीने का भी उपयोग नहीं जानते। जब संस्कृतियाँ बहुत समझदार थीं इस मामले में तो पहले छः महीने बड़े महत्त्वपूर्ण थे। बच्चे को पहले छ: महीने मे ही सब कुछ दिया जा सकता है, जो भी महत्त्वपूर्ण है। फिर कभी नहीं दिया जा सकता। फिर बहुत कठिन हो जाता है। क्योंकि उस वक्त वह संध्याकाल में है, सजेस्टिबल है। लेकिन हम बोल कर कुछ नहीं समझा सकते उसको, और चूँकि बोलने के सिवाय हमें और कुछ रास्ता मालूम नहीं है कहने का, इसलिए अड़चन है। ऐसे ही मरने के पहले छः महीने का वक्त बहुत कीमती है उधर बच्चे को हम समझा नही पाते छः महीने, तो लगता है कि ये गये। इधर बूढे के हमे छः महीने पता नहीं होते कि कब छः महीने रहे। ये दोनों मौके चूक जाते है। लेकिन जो आदमी सुबह का घण्टे भर का उपयोग करे और रात के घण्टे भर का ठीक उपयोग करे तो मरने के छः महीने पहले उसको पक्का पता चल जायगा कि अब मरना है। जो आदमी रात सोने के पहले घण्टे भर प्रार्थना में व्यतीत कर दे उसे स्पष्ट बोध होने लगेगा कि संध्या का काल क्या है। वह इतना बारीक और सूक्ष्म अनुभव है, कि न तो वह जागने जैसा है, न सोने जैसा। इतना बारीक और अलग है कि अगर उसकी प्रतीति होनी शुरू हो गयी तो मरने के छ महीना पहले आपको पता लगेगा कि अब वह प्रतीति रोज दिन भर रहने लगी है। वही प्रतीति, जो घण्टे भर रात सोते वक्त आपके भीतर आती है, वह मरने के पहले छ. महीने स्थिर हो जायेगी। इसलिए मरने के पहले के छः महीने को पूरी साधना में डुबा देने है, वही छ महीने 'बारडो' के लिए उपयोग किये जाते हे जिसमें ग्रीम ट्रेनिग देते हैं कि अब अगली यात्रा में तुम क्या करोगे। वह कोई ठीक मरते वक्त नही दी जा सकती एकदम। उसके लिए तैयारी चाहिए। और जो आदमी इस छ. महीने में तैयार हो, उसी आदमी को उसके अगले जन्म के पहले छ महीने में ट्रेनिग दी जा सकती है, अन्यथा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि इस छ महीने में वे सारे सूत्र उसे सिखा दिये जाते हैं जिन सूत्रों के आधार पर उसके अगले छ महीने मे उसकी ट्रेनिग दी जा सके।

इस सब की पूरी की पूरी अपनी वैज्ञानिकता है और इस सबके अपने सूत्र और राज हैं। और सारी चीजें तय की जा सकती हैं। वे अनुभव है उस बीच के कि जो आदमी सारी प्रक्रिया से गुजरा हो वह छः महीने के बाद भी याद रख सकता है। लेकिन, याददाश्त सपने की रह जाती है। यथार्थ की नहीं होती। स्वर्ग-नरक दोनों ही सपने की याददाश्त हो जाती है। विवरण दिये जा सकते हैं। उन्हीं

विवरणों के आधार पर सारी दुनिया में स्वर्गों-नरकों का सब लेखा-जोखा निर्मित हुआ है। लेकिन विवरण अलग-अलग हैं, क्योंकि सबके स्वर्ग-नरक अलग-अलग होंगे। क्योंकि स्वर्ग-नरक कोई स्थान नहीं है, मानसिक दशाएँ हैं। इसलिए जब ईसाई स्वर्ग का वर्णन करते हैं तो वह और तरह का है। वह और तरह का इसलिए है कि जिन्होंने वर्णन किया है उन पर निर्भर है। भारतीय जब वर्णन करते हैं तो और तरह का होगा, जैन और तरह का करेंगे, बौद्ध और तरह का करेंगे। असल में हर आदमी अलग तरह की खबर लायेगा। करीब-करीब स्थिति ऐसी है जैसे हम सारे लोग कमरे में सो जायें और कल उठ कर सब अपने-अपने सपनों की चर्चा करें। हम सब एक ही जगह सोये थे। हम सब यहीं थे, फिर भी हमारे सपने अलग-अलग हैं। वह हम पर निर्भर करेंगे। इसलिए स्वर्ग और नरक बिलकुल वैयक्तिक घटनाएँ हैं। लेकिन मोटे हिसाब बाँधे जा सकते हैं,—कि स्वर्ग में सुख होगा, कि नरक में दुख होगा, कि दुख के क्या रूप होंगे, सुख के क्या रूप होंगे। ये सारे ब्यौरे, जो भी दिये गये हैं अब तक, वे सभी सही हैं, चित्त-दशाओं की भाँति।

और पूछा है कि जन्म को चुन सकता है व्यक्ति तो क्या अपनी मृत्यु को भी चुन सकता है? इसमें भी दो-तीन बातें ख्याल में लेनी पड़ेगी। एक, जन्म को चुन सकने का मतलब यह है कि चाहे तो जन्म ले। यह तो पहली स्वतन्त्रता है ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति की। चाहे तो जन्म ले, लेकिन जैसे ही हमने कोई चीज चाही कि चाह के साथ परतन्त्रताएँ शुरू हो जाती है। मैं मकान के बाहर खड़ा था। मुझे स्वतन्त्रता थी कि चाहूँ तो मकान के भीतर आऊँ। मकान के भीतर मैं आया, अब मकान के भीतर आते ही मकान की सीमा और मकान की परतन्त्रताएँ तत्काल शुरू हो जाती हैं। तो जन्म लेने की स्वतन्त्रता जितनी बड़ी है, मरने की स्वतन्त्रता उतनी बड़ी नहीं है। साधारण आदमी को तो मरने की कोई स्वतन्त्रता नही, क्योंकि उसने जन्म को अभी नही चुना। लेकिन फिर भी जन्म की स्वतन्त्रता बहुत बड़ी है, टोटल है एक अर्थ में, कि वह चाहे तो इनकार भी कर दे, न चुने। लेकिन चुनने के साथ बहुत-सी परतन्त्रताएँ शुरू हो जाती है। क्योंकि वह सीमाएँ चुनता है। वह विराट् जगह को छोड़ कर सँकरी जगह मे प्रवेश करता है। अब सँकरी जगह की अपनी सीमाएँ होंगी।

अब वह एक गर्भ चुनता है। साधारणत: तो हम गर्भ नही चुनते हैं इसलिए कोई बात नहीं है। लेकिन वैसा आदमी जब गर्भ चुनता है, उस वक्त उसके सामने लाखों गर्भ होते हैं। उनमें से ही कोई एक गर्भ चुनता है। हर गर्भ के चुनाव के साथ वह परतन्त्रता की दुनिया में प्रवेश कर रहा है। क्योंकि गर्भ की अपनी सीमाएँ हैं। उसने एक माँ चुनी, एक पिता चुना। उन माँ और पिता के वीर्याणुओं

की जितनी आयु हो सकती है वह उसने चुनी। यह चुनाव हो गये। अब इस शरीर का उसे उपयोग करना पड़ेगा। आप बाजार में एक मशीन खरीदने गये हैं, एक दस साल की गारन्टी की मशीन आपने चुन ली। अब सीमा आ गयी एक। यह वह जान कर ही चुन रहा है। इसलिए परतन्त्रता उसे नहीं मालूम पड़ेगी। परतन्त्रता हो जायेगी, लेकिन वह जान कर चुन रहा है। आप यह नहीं कहते कि मैंने यह मशीन खरीदी, दस साल चलेगी, तो अब मैं गुलाम हो गया। आपने ही चुनी है, दस साल चलेगी यह जान कर चुनी है, बस बात खत्म हो गयी। इसमें कहीं कोई पीड़ा नहीं है, इसमें कहीं कोई दंश नहीं है। यद्यपि यह वह जानता है कि यह शरीर कब समाप्त हो जायगा। और इसलिए इस शरीर के समाप्त होने का जो बोध है वह उसे होगा। इसलिए इस तरह के आदमी में एक तरह की व्यग्रता होगी जो साधारण आदमी में नहीं होती है। अगर हम जीसस की बातें पढ़ें, तो ऐसा लगता है वह बहुत व्यग्र हैं। जैसे अभी कुछ होने वाला है, अभी कुछ हो जाने वाला है। उनकी तकलीफ वह लोग नहीं समझ सकते, जो सुन रहे हैं। क्योंकि उन सुनने वालों की मृत्यु का कोई सवाल नहीं और जीसस के लिए तो वह सामने खड़ी है। जीसस को पता है कि यह हो जाने वाला है। इसलिए अगर जीसस आपसे यह कह रहा है, यह काम कर लो और आप कहते हैं कल कर लेंगे। अब जीसस की कठिनाई यह है कि वह जानता है कि कल वह कहने को नहीं होगा। तो चाहे महावीर हों, चाहे बुद्ध हों, चाहे जीसस हों इनकी व्यग्रता बहुत ज्यादा है। बहुत तीव्रता से भाग रहे हैं। क्योंकि वह सारे मुर्दों के बीच में वह ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें सब पता है। सब लोग तो बिलकुल निश्चिन्त हैं। पर ऐसे आदमी को जल्दी होगी ही। इससे फर्क नहीं पड़ता कि वह सौ साल जियेगा कि दो सौ साल जियेगा। सारा समय छोटा है। हमें समय छोटा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि वह कब खत्म होगा, इसका हमें कुछ पता नहीं। खत्म भी होगा, यह भी हम भुलाये रखते हैं।

जन्म की स्वतन्त्रता तो बहुत ज्यादा है। लेकिन जन्म कारागृह में प्रवेश है, तो कारागृह की अपनी परतन्त्रताएँ हैं, वह स्वीकार कर लेनी पड़ेगी। और ऐसा व्यक्ति सहजता से स्वीकार करता है, क्योंकि वह चुन रहा है। अगर वह कारागृह में आया है, तो लाया नहीं गया है, वह आया है। इसलिए वह हाथ बढ़ा कर जंजीरें डलवा लेता है। इन जंजीरों में कोई दंश नहीं है, इनमें कोई पीड़ा नहीं है। वह अँधेरी दीवालों के पास सो जाता है इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि किसी ने उससे कहा नहीं कि वह भीतर आय। वह खुले आकाश के नीचे रह सकता था। अपनी मर्जी से आया है, यह उसका चुनाव है।

जब परतन्त्रता भी चुनी जाती है तो स्वतन्त्रता है। अगर स्वतन्त्रता भी

बिना चुनी मिलती है तो परतन्त्रता है। स्वतन्त्रता परतन्त्रता इतनी सीधी बँटी हुई चीजें हैं। अगर हमने परतन्त्रता भी स्वयं चुनी है तो वह स्वतन्त्रता है और अगर हमें स्वतन्त्रता भी जबरदस्ती दे दी गयी है तो वह परतन्त्रता ही होती है, उसमें कोई स्वतन्त्रता नहीं होती। फिर भी, ऐसे व्यक्ति के लिए बहुत-सी बातें साफ होती हैं इसलिए वह चीजों को तय कर सकता है। जैसे उसे पता है कि वह सत्तर साल में चला जायगा तो वह चीजों को तय कर पाता है। जो उसे करना है, वह साफ कर लेता है। चीजों को उलझाता नहीं। जो साल में सुलझ जाय वैसा ही काम कर लेगा। जो कल पूरा हो सकेगा, वह निपटा देगा। वह इतने जाल नहीं फैलाता जो कि कल के बाहर चले जायें। इसलिए वह कभी चिन्ता में नहीं होता। वह जैसे जीता है वैसे ही मरने की भी सारी तैयारी करता है। मौत भी उसके लिए एक प्रिपरेशन है, एक तैयारी है। एक अर्थ में वह बहुत जल्दी में होता है, जहाँ तक दूसरों का सम्बन्ध है। जहा तक खुद का सम्बन्ध है उसकी कोई जल्दी नहीं होती। क्योंकि कुछ करने को उसके लिए बचा नहीं होता है। फिर भी मृत्यु का, वह कैसे घटित हो, इसका चुनाव कर सकता है। कब घटित हो, इसकी व्यवस्था भी है, सीमाओं के भीतर सत्तर साल उसका शरीर चलता है तो सीमाओं के भीतर वह सत्तर साल में ठीक मूमेंट दे सकता है मरने का, कि वह कब मरे; कैसे मरे किस व्यवस्था और किस ढंग में मरे।

एक जैन फकीर औरत थी, उसने कोई छः महीने पहले अपने मरने की खबर दी। उसने अपनी चिता तैयार करवायी। वह चिता पर सवार हो गयी, उसने सबको नमस्कार कर लिया, फिर [illegible] आग लगा दी। तब एक साधु, जो देख रहा था खड़ा हुआ उसने जोर से पूछा, जब आग की लपटें लग गयी और वह जलने के करीब होने लगी। उसने पूछा उससे, कि वहाँ भीतर गर्मी तो बहुत मालूम होती होगी? तो वह फकीर औरत हँसी और उसने कहा कि तुम कैसे मूढ़ हो अभी भी इस तरह के [illegible] पूछ रहे हो! तुम्हें कोई काम लायक बात पूछने की नहीं [illegible] यह तो तुम्हें भी दिखायी पड़ रहा है; और आग में बैठूँगी तो गर्मी लगेगी या नहीं लगेगी यह मुझे भी पता है। पर यह उसका चुनाव था। वह [illegible] है। वह अपनी मृत्यु के क्षण को चुनती है। उसके जो हजारों शिष्य [illegible], उनको वह दिखा कर जाना चाहती है कि हँसते हुए मरा जा सकता है। (जिनके लिए हँसते हुए जीना भी मुश्किल है उनके लिए यह [illegible] काम का है कि हँसते हुए मरा जा सकता है!)

मृत्यु को [illegible] जा सकता है, वह व्यक्ति पर निर्भर करेगा कि वह कैसा चुनाव करता है। लेकिन, सीमाओं के भीतर सारी बात होती है।

असीम नहीं है मामला। इस कमरे के भीतर रहना पड़ेगा मुझे, लेकिन मैं किस कोने में बैठूं, यह मैं तय कर सकता हूं। बायें सोऊँ कि दायें सोऊँ, यह मैं तय कर सकता हूं। ऐसी स्वतन्त्रताएँ होंगी। और ऐसे व्यक्ति अपनी मृत्यु का निश्चित ही उपयोग करते हैं। कई बार प्रकट दिखायी पड़ता है उपयोग, कई बार प्रकट दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन ऐसे व्यक्ति अपने जीवन की प्रत्येक चीज का उपयोग करते हैं, मृत्यु का भी उपयोग करते हैं। असल में वह आते ही अब किसी उपयोग के लिए हैं। उनका अपना कोई प्रयोजन नही रह गया होता है। अब उनका आना किसी के काम पड़ जाने के लिए है। पर बडा कठिन है कि हम उनके प्रयोग को समझ पायें। अक्सर हम समझ नही पाते। क्योंकि जो भी वह कर रहे हैं, हमें तो कुछ पता नही होता और हमें पता करवा कर किया भी नहीं जा सकता।

अब जैसे बुद्ध जैसा आदमी नहीं कहेगा कि मैं कल मर जाने वाला हूँ। क्योंकि कल मरना है तो आज कह देने का मतलब होगा, कि कल तक जो भी जीवन का उपयोग हो सकता था वह मुश्किल हो जायगा। ये लोग आज से ही रोना-धोना, चिल्लाना शुरू कर देंगे। इन चौबीस घण्टे का जो उपयोग हो सकता था वह नही हो सकता। तो कई बार वैसा व्यक्ति चुपचाप रह जायगा, कई बार घोषणा भी करेगा। जैसी तत्काल परिस्थिति होगी, पर इतनी सीमा तक वह तय करता है।

ज्ञान के बाद का जन्म, जन्म से लेकर मृत्यु तक पूरा का पूरा एक शिक्षण है, पर खुद के लिए नही। एक अनुशासन है, खुद के लिए नही। और हर बार स्ट्रेटेजी बदलनी पड़ती है, क्योंकि सब स्ट्रेटेजी पुरानी पड़ जाती हैं, बोझिल हो जाती हैं, और लोगों को समझने मे मुश्किल पड जाती है। अब गुरजिएफ का उदाहरण लें। महावीर कभी पैसा नहीं छुयेंगे पर गुरजिएफ से आप एक सवाल पूछेंगे तो वह कहेगा, सौ रुपये पहले रख दो। सौ रुपये बिना रखे वह सवाल भी स्वीकार नही करेगा। सौ रुपये रखवा लेगा तब एक सवाल का जवाब देगा। हो सकता है एक वाक्य बोले, हो सकता है दो वाक्य बोले। फिर दूसरी बार पूछो फिर सौ रुपये रख दें। अनेक बार लोगो ने कहा, आप यह क्या करते हैं? जो उसे जानते थे वह हैरान होते थे, क्योंकि ये रुपये यहाँ आये और यहाँ बँट जाने वाले हैं। कुछ भी होने वाला नही है उनका। गुरजिएफ उन्हें रखने वाला है एक क्षण को, ऐसा भी नहीं है, वह इधर-उधर बँट जाने वाले हैं। फिर किसलिए सौ रुपये माँग लिये? गुरजिएफ ने कहा, कि जिन लोगो के मन में सिर्फ रुपये का मूल्य है उन्हें परमात्मा के सम्बन्ध में मुफ्त कहना गलत है। एकदम गलत है। क्योंकि उनकी जिन्दगी में मुफ्त की चीज का कोई मूल्य नहीं होता। और गुरजिएफ कहता है कि हर

चीज के लिए चुकाना पड़ेगा कुछ। जो चुकाने की तैयारी नहीं रखता, कुछ भी चुकाने की तैयारी नहीं रखता, उसको पाने का हक भी नहीं है। लेकिन लोग समझते हैं कि गुरजिएफ को पैसे की बड़ी पकड़ है। जो दूर से ही देखते हैं उनको लगता है कि पैसे की बड़ी पकड़ है, बिना पैसे के सवाल का जवाब भी नहीं देता है। पर मैं मानता हूँ कि जिस जगह था वह, पश्चिम में, जहाँ पैसा एकमात्र मूल्य हो गया, वहाँ उसी तरह के शिक्षक की जरूरत थी। एक-एक शब्द का मूल्य ले लेता, क्योंकि वह जानता है कि जिस शब्द के लिए तुमने सौ रुपये दिये हैं जिसको, तुमने सौ रुपये देने की तैयारी दिखायी जिस शब्द के लिए, तुम उसको ही ले जाओगे, बाकी तुम कुछ ले जाने वाले नहीं हो।

गुरजिएफ बहुत-से ऐसे काम करेगा जो बिलकुल ही कठिन मालूम पड़ेंगे। उसके शिष्य बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे, वे कहेंगे, यह आप न करते तो अच्छा था। और वह जान कर करेगा। वह बैठा है, आप उससे मिलने गये हैं, वह ऐसी शक्ल बना लेगा कि ऐसा लगे जैसे ठीक गुण्डा, बदमाश है। साधु तो बिलकुल नहीं है। बहुत दिन तक सूफी प्रयोग करने की वजह से आँखों के कोण को वह तत्काल कैसा भी बदल सकता था। और आँखों के कोण के बदलने से पूरी शकल बदल जाती है। एक गुण्डे में और एक साधु में आँख के अलावा और कोई फर्क नहीं होता। बाकी तो सब एक-सा ही होता है। आँख का कोण जरा ही बदला कि साधु गुण्डा हो जाता है, गुण्डा साधु हो जाता है। आँखें उसकी बिलकुल ढीली थीं दोनों। आँखों को वह ऐसे घुमाता कि उनकी पुतलियाँ कैसे ही कोण ले सकती हैं। यह एक सेकेण्ड में ही कर लेता। बगल वाले को पता ही नहीं चलता कि उसने दूसरे को गुण्डा दिखा दिया है और आये हुए आदमी को घबड़ा दिया है। बगल वाला आदमी एकदम घबड़ा जाता कि यह आदमी कैसा है, मैं कहाँ आ गया? उसके मित्रों ने धीरे-धीरे पकड़ा उसे कि वह इस तरह कई लोगों को परेशान करता है और उससे पूछा कि आप यह क्या करते हैं? हमें पता ही नहीं चलता है कि वह बेचारा आया था, आपने उसे गड़बड़ा दिया। तो गुरजिएफ कहता है कि वह आदमी, अगर मैं साधु भी होता तो मुझमें गुण्डा खोज लेता। थोड़ी देर लगती। मैंने उसका वक्त जाया नहीं करवाया। मैंने कहा, तू देख ले, तू जा। क्योंकि तू नाहक दो-चार दिन चक्कर लगायेगा, खोजेगा तू यही। मैं तुझे खुद ही सौंपे देता हूँ। अगर वह इसके बाद भी रुक जाता तो मैं उसके साथ मेहनत करता। इसलिए बहुत मुश्किल मामला है। जो गुरजिएफ को गुण्डा समझ कर चला गया, अब कभी दोबारा नहीं आयेगा। लेकिन गुरजिएफ का जानना गहरा है। वह ठीक कह रहा है। वह कह रहा है, यह आदमी यही खोज लेता। इसको खुद

मेहनत करनी पड़ती, वह काम मैंने हल कर दिया। इसके चार दिन खराब नहीं हुए और मेरे चार दिन खराब नहीं हुए। अगर यह सच में ही किसी खोज में आया था, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था, वह फिर भी रुकता। वह मेरे बावजूद रुके तो ही रुका, मेरी वजह से रुके तो मैं इसे रुकना कहूँगा। वह खोजने आया हो तो रुके, धैर्य रखे, थोड़ी जल्दी न करे। इतने जल्दी नतीजे लेगा कि मेरी आँख जरा ऐसी हो गयी तो उसने समझा कि आदमी गड़बड़ है। इतने जल्दी नतीजे लेगा तो मुझमें कुछ-न-कुछ उसे मिल जायगा और वह नतीजे लेकर चला जायगा।

यह शिक्षक पर निर्भर करेगा कि वह क्या करता है, कैसे करता है। बहुत बार तो जिन्दगी भर पता नहीं चलता है कि उसके करने की व्यवस्था क्या है। पर वह जिन्दगी के प्रत्येक क्षण का उपयोग करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक। एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गँवाता है। उसकी कोई गहरी सार्थकता है, किसी बड़े प्रयोजन और किसी बड़ी नियति में उपयोग है। ●

चार

•

वार्तालाप

१२-३-७१

प्रश्न : आचार्यश्री, उस समयातीत अन्तराल में आत्मा पर क्या घटित होता है वह तो दर्शाया आपने, किन्तु एक बात रह गयी कि आत्मा का अशरीरी रूप क्या होता है ? वह स्थिर है या विचरण करती है और अपनी परिचित दूसरी आत्माओं को पहचानती कैसे है ? और उस अवस्था में आपस में कोई डायलॉग की सम्भावना होती है ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए। एक तो स्थिरता और गति ये दोनों ही वहाँ नहीं होते। और इसलिए समझना बहुत कठिन होगा। हमें समझना आसान होता है कि गति न हो, तो स्थिरता होगी। स्थिरता न हो, तो गति होगी। क्योंकि हमारे ख्याल में गति और स्थिरता दो ही सम्भावनाएँ हैं। और एक न हो तो दूसरा अनिवार्य है। हम यह भी समझते हैं कि वे दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं।

पहली तो बात, गति और स्थिरता विरोधी नहीं है। गति और स्थिरता एक ही चीज की तारतम्यता है। जिसको हम स्थिरता कहते हैं वह ऐसी गति है जो हमारी पकड़ में नहीं आती। जिसको हम गति कहते हैं वह भी ऐसी स्थिरता है जो हमारे ख्याल में नहीं आती। यदि बहुत तीव्र गति हो तो भी स्थिर मालूम होगी। यह ऊपर पंखा है, यह तेज गति से चलता हो तब इसकी तीन पंखुड़ियाँ दिखायी नहीं पड़ती है। बहुत तेज चले तो सम्भावना ही नहीं है अनुमान करने की कि कितनी पंखुड़ियाँ हैं ! क्योंकि बीच की जो खाली जगह होती हैं तीन पंखुड़ियों के इसके पहले कि वह हमें दिखायी पड़े पंखुड़ी उस जगह को भर देती है। वह पंखा इतनी तेज गति से भी चलाया जा सकता है कि हम इसके आर-पार किसी चीज को भी न निकाल पायें। यह इतना भी तेज चल सकता है कि हम इसको हाथ से छुएँ और इसकी गति न मालूम पड़े। जब हम किसी चीज

को हाथ से छूते हैं अगर बीच का जो खाली हिस्सा है वह हमारे हाथ के स्पर्श में पकड़ने के पहले दूसरी पंखुड़ी फिर नीचे आ जाय तो हमें पता नहीं चलता। इसलिए विज्ञान कहता है कि हर चीज जो हमें स्थिर मालूम पड़ रही है वह सब गतिमान है। पर गति बहुत तीव्र है। हमारी पकड़ के बाहर है। तो गति और स्थिर होना दो चीजें नहीं हैं। और एक ही चीज की डिग्रियाँ हैं। उस जगत् में जहाँ शरीर नहीं है ये दोनों नहीं होंगी। क्योंकि जहाँ शरीर नहीं है वहाँ स्पेस भी नहीं है, टाइम भी नहीं है। जैसा हम जानते हैं; समय और स्थान के बाहर किसी भी चीज को सोचना हमें अति कठिन है। क्योंकि हम ऐसी कोई चीज नहीं जानते जो समय और स्थान के बाहर हो।

तो वहाँ क्या होगा ? अगर दोनों न हों तो हमारे पास कोई शब्द नहीं है जो कहे कि वहाँ क्या होगा। जब पहली दफा धर्म के अनुभव में उस स्थिति की खबरें आनी शुरू हुईं तब भी यह कठिनाई खड़ी हुई। कहें क्या ? ऐसा ठीक समानान्तर उदाहरण विज्ञान के पास भी है। जहाँ कठिनाई खड़ी हो गयी कि, कहें क्या ? जब कि हमारी धारणाओं से भिन्न स्थिति का अनुभव होता है तो बड़ी कठिनाई शुरू हो जाती है। जैसे कि चालीस साल पहले जब पहली दफा इलेक्ट्रॉन का अनुभव विज्ञान को हुआ तो सवाल उठा कि इलेक्ट्रॉन कण है या तरंग ? और यहीं कठिनाई खड़ी हो गयी। न तो उसे कण कह सकते, क्योंकि कण तो ठहरा हुआ होता है, न तरंग, क्योंकि तरंग गतिमान् होती है। वह दोनों एक साथ है। तब दिक्कत शुरू हो जाती है, क्योंकि हमारी समझ में वह दोनों में से एक ही हो सकता है। और इलेक्ट्रॉन दोनों एक साथ है—कण भी और तरंग भी। कभी हमारी पकड़ में आता है कि वह कण है और कभी हमारी पकड़ में आता है कि वह तरंग है। और तब शब्द ही नहीं है कोई दुनिया की किसी भाषा में—कण-तरंग इकट्ठा कि जिसे हम प्रकट कर सकें। और जब वैज्ञानिकों ने यह देखा तो वैज्ञानिक खुद कहने लगे, कि कण तरंग दोनों है। लेकिन उनके लिए भी कंसीवेबल नहीं रहा है। रहस्य हो गयी बात ! और जब आइन्स्टीन से लोगों ने कहा कि आप दोनों बातें एक साथ कहते हैं जो कि तर्क में नहीं आती हैं, यह थोड़ी रहस्य की बातें हो गयीं हैं। तो आइन्स्टीन ने कहा, हम तर्क को मानें कि तथ्य को मानें। तथ्य यही है कि वह दोनों हैं एक साथ और तर्क यही कहता है कि दोनों में से एक ही हो सकता है। एक आदमी खड़ा हुआ है या चल रहा है। तर्क कहेगा, दो में से एक ही हो सकता है। आप कहें कि वह खड़ा भी है और चल भी रहा है—एक साथ। तर्क नहीं मानेगा, तर्क के पास कोई धारणा नहीं है। लेकिन इलेक्ट्रोन के अनुभव ने वैज्ञानिकों को कहा कि तर्क की फिक्र छोड़ देनी पड़ेगी, अन्यथा यह

होगा कि तथ्य को झुठलाओ ! सारे प्रयोग कहते हैं कि वह दोनों हैं। यह मैंने उदाहरण के लिए आपसे कहा।

सारे धार्मिक लोगों के अनुभव कहते हैं कि वह स्थिति, दोनों नहीं है। न ठहरी हुई है, न गतिमान् है। लेकिन जो भी यह कहेगा कि दोनों नहीं है वह अन्तराल का क्षण, यानी एक शरीर के छूटने और दूसरे शरीर के मिलने के बीच के क्षण में दोनों बातें नहीं हैं। तो वह समझ के बाहर हो जायेगी। इसलिए कुछ धर्मों ने तय किया है कि वह कहेंगे कि वह थिर है; कुछ धर्मों ने तय किया है कि वह कहेंगे कि वह गतिमान् हैं। लेकिन यह सिर्फ समझाने की कठिनाई का परिणाम है। अन्यथा कोई इस बात के लिए राजी नहीं है कि वहाँ स्थिति को, स्थिति कहें कि गति कहें। दोनों नहीं कहे जा सकते। क्योंकि जिस परिवेश में स्थिति और गति घटित होती हैं, वह परिवेश ही वहाँ नहीं है।

स्थिति और गति दोनों के लिए शरीर अनिवार्य है। शरीर के बिना गति नहीं हो सकती। और शरीर के बिना स्थिति भी नहीं हो सकती। क्योंकि जिसके माध्यम से स्थिति हो सकती है, उसीके माध्यम से गति हो सकती है। अब जैसे यह हाथ है मेरा, मैं इसे हिला रहा हूँ या इसे ठहराये हुए हूँ ? कोई मुझसे पूछ सकता है कि इस हाथ के भीतर जो मेरी आत्मा है, जब हाथ नहीं रहेगा तो वह आत्मा ठहरी हुई रहेगी कि गति में रहेगी ? दोनों बातें व्यर्थ हैं। क्योंकि इस हाथ के बिना न वह गति कर सकती है और न ठहरी हुई हो सकती है। ठहरना और गति दोनों ही शरीर के गुण हैं। शरीर के बाहर ठहरने और गति का कोई भी अर्थ नहीं है। ठीक यही बात समस्त द्वन्द्वों पर लागू होती है। जैसे बोलना या मौन होना लीजिये। शरीर के बिना न तो बोला जा सकता है और न मौन हुआ जा सकता है। आम तौर से हमारी समझ में आ जायेगी बात कि शरीर के बिना बोला नहीं जा सकता; लेकिन मौन नहीं हुआ जा सकता, यह समझ में आना कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम सोचते हैं शरीर के लिए मौन,—लेकिन असली बात यह है कि जिस माध्यम से बोला जा सकता है उसी माध्यम से मौन हुआ जा सकता है। क्योंकि मौन होना भी बोलने का एक ढंग है। मौन होना, बोलने की ही एक अवस्था है। 'न बोलने की', लेकिन है बोलने की।

जैसे उदाहरण के लिए एक आदमी है, अन्धा है। तो हमें ख्याल होता है कि शायद उसको अँधेरा ही दिखायी देता होगा। यह हमारी भ्रान्ति है। अँधेरा देखने के लिए भी आँख जरूरी है। आँख के बिना अँधेरा भी दिखायी नहीं पड़ सकता। हम आँख बन्द करके सोचते हों तो हम गलती में पड़ते हैं। क्योंकि आँख बन्द करके भी आँख है, आप अन्धे नहीं हैं। और अगर एक दफा आपके पास आँख

रही हो और फिर अंधी हो जाय तो भी आपको अँधेरे का ख्याल रहेगा, जो कि झूठ है, जो कि जन्म से अंधे आदमी को नहीं है। क्योंकि अँधेरा जो है, वह आँख का ही अनुभव है। जिससे प्रकाश का अनुभव होता है, उसीसे अन्धकार का भी अनुभव होता है। जो जन्मांध है, उसे अँधेरे का भी कोई पता नहीं। अँधेरा भी जानेगा कैसे ?

कान से आप सुनते हैं। भाषा में ठीक लगता है कि जिसके पास कान नहीं हैं, हम कहेंगे वह नहीं सुन रहा है। लेकिन नहीं सुनने की घटना भी नहीं घटती है बहरे के लिए। नहीं सुनने की भी जो प्रतीति है, वह कान वाले की प्रतीति है। कभी ऐसा होता है कि आप नहीं सुनते हैं। पर कान उसके लिए भी जरूरी है। कान के बिना 'नहीं सुनने' का भी कोई पता नहीं चल सकता। वह अँधेरे की तरह है। तो जिस इन्द्रिय से गति होती है, उसी इन्द्रिय से ठहराव होता है। और दो में से यदि एक चीज नहीं है तो दूसरी भी नहीं हो सकती। वैसी अवस्था में आत्मा बोलती है या चुप रहती है, दोनों ही बातें सम्भव नहीं है। उपकरण ही नहीं है, बोलने का या चुप रहने का। ये सब उपकरण-निर्भर घटनाएँ हैं। जगत् के समस्त अनुभव के लिए उपकरण चाहिए। साधन चाहिए। इन्द्रियाँ चाहिए।

जहाँ भी शरीर नहीं है, वहाँ शरीर से सम्बन्धित समस्त अनुभव तिरोहित हो जाते हैं। प्रश्न उठता है कि फिर वहाँ कुछ बचेगा ? अगर आपके जीवन में कोई भी शरीर के रहते हुए, अशरीरी अनुभव हुआ हो तो बचेगा। अन्यथा कुछ भी नहीं बचेगा। अगर आपके जीते जी, शरीर के रहते हुए, कोई भी अनुभव हुआ हो, जिसके लिए शरीर माध्यम नहीं था, वह बचेगा। ध्यान के कोई भी अनुभव हों गहरे, तो वह बचेंगे। साधारण अनुभव नहीं बचेंगे ध्यान के, ध्यान में आपको प्रकाश दिखायी पड़ा, वह नहीं बचेगा। लेकिन ध्यान में अगर कोई ऐसा अनुभव हुआ हो जिसमें शरीर ने कोई माध्यम का काम ही नहीं किया हो, आप कह सकते थे शरीर था या नहीं मुझे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था, तो बच जायगा। और ऐसे अनुभव के लिए कोई भाषा नहीं है। शरीर रहते हुए हो, तो भी भाषा नहीं। ये सारी कठिनाइयाँ हैं।

फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि वैसी आत्मा मोक्ष में पहुँच गयी, क्योंकि ये दोनों विवरण एक जैसे लगेंगे। मोक्ष में, और दो शरीरों के बीच में जो अन्तराल है इसमें, क्या भेद रहा ? भेद पोटेंशियलिटी के, बीज के रहेंगे। वास्तविकता के नहीं रहेंगे। दो शरीरों के बीच में जो अशरीरी व्यवधान है बीच का, उसमें आपके जितने संस्कार हैं समस्त जन्मों के, वह बीज-रूप में सब मौजूद रहेंगे। शरीर के मिलते ही वे फिर सक्रिय हो जायेंगे। जैसे एक आदमी के पैर हमने काट

दिये, तो भी उसके दौड़ने के जो अनुभव हैं वह विदा नहीं हो जायेंगे। दौड़ नहीं सकता, रुक भी नहीं सकता, क्योंकि दौड़ नहीं सकता तो रुकेगा कैसे ! लेकिन अगर पैर मिल जायें तो दौड़ने की समस्त संस्कार-धारा पुनः सक्रिय हो जायगी। जैसे एक आदमी कार चलाता है, और उसकी कार छीन ली। अब वह कार नहीं चला सकता, एक्सीलेटर नहीं दबा सकता; ब्रेक भी नहीं लगा सकता और कार रोक भी नहीं सकता, वह दोनों ही कार के अनुभव हैं। अब वह कार के बाहर है, लेकिन कार के चलाने का जो भी अनुभव है, वह सब बीज रूप में मौजूद है। वर्षों बाद, एक्सीलेटर पर ज्यों ही पैर रखेगा, वह कार चला सकेगा। वही आत्मा मोक्ष में संस्कार-रहित हो जाती है। दो शरीरों के बीच में सिर्फ इन्द्रिय-रहित होती है। मोक्ष में समस्त अनुभव, समस्त अनुभवजन्य संस्कार, सब कर्म, सब तिरोहित हो जाते हैं। उनकी निर्जरा हो जाती है। इस बीच, और मोक्ष की अवस्था में एक समानता है, दोनों में शरीर नहीं होता है। एक असमानता है,--मोक्ष में शरीर नहीं होता, शरीर से सम्बन्धित अनुभवों का जाल भी नहीं होता। किन्तु यहाँ शरीर से सम्बन्धित अनुभवों की सब सूक्ष्म तरंगें बीज रूप से मौजूद होती हैं, जो कभी भी सक्रिय हो सकती हैं। और इस बीच जो-जो अनुभव होंगे, वह शरीर जहाँ नहीं था, वैसे अनुभव होंगे। जैसा मैंने कहा, ध्यान के अनुभव होंगे।

लेकिन ध्यान के अनुभव तो बहुत कम लोगों के हैं। कभी करोड़ में एक आदमी को ध्यान के अनुभव हैं। शेष का क्या कोई अनुभव नहीं होगा ? अनुभव होंगे, स्वप्न के अनुभव होंगे। स्वप्न में शरीर की कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। इस बात की सम्भावना है कि अगर हम एक आदमी स्वप्न में हो, और उसे स्वप्न में ही रखें और उसके सारे शरीर को काट कर अलग कर दें तो आवश्यक नहीं है कि उसके स्वप्न में जरा-सा भी भंग पड़े। कठिनाई है कि उसकी नींद टूट जायेगी। काश, हम उसे नींद में रख सकें और उसके एक-एक अंग को अलग करते चले जायें तो उसके स्वप्न में कोई भंग नहीं होगा। क्योंकि शरीर का कोई हिस्सा उसके स्वप्न में अनिवार्य कारण नहीं हैं। स्वप्न में शरीर बिलकुल सक्रिय नहीं है, शरीर का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। स्वप्न के अनुभव आपके शेष रहेंगे। बल्कि आपके समस्त अनुभव स्वप्नों का ही रूप लेकर शेष रहेंगे। अगर कोई आपसे पूछे कि स्वप्न में आप स्थिर होते हैं कि गतिमान होते हैं, तो कठिनाई होगी। स्वप्न से जागते तो यह अनुभव होता है कि अपनी जगह पर पड़े हुए हैं, फिर स्वप्न के भीतर। लेकिन स्वप्न के बाहर आकर पता लगता है कि स्वप्न में तो बड़ी गति है। लेकिन ध्यान रहे, स्वप्न में गति भी नहीं होती। अगर बहुत ठीक से समझें तो स्वप्न में आप भागीदार भी नहीं होते। बहुत गहरे में सिर्फ साक्षी हो

सकते हैं। इसलिए स्वप्न में अपने को मरता हुआ भी देख सकते हैं। स्वप्न में अपनी लाश को पड़े हुए भी देख सकते हैं। और स्वप्न में अगर आप अपने को चलता भी देखते हैं, तो जिसे आप चलता देखते हैं वह सिर्फ स्वप्न होता है, आप तो देखने वाले ही होते हैं। स्वप्न को यदि ठीक से समझें तो आप सिर्फ विटनेस होते हैं। इसीलिए धर्म ने एक सूत्र खोज निकाला कि जो व्यक्ति जगत् को स्वप्न की भाँति देखने लगे, वह परम अनुभूति को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए जगत् को माया और स्वप्न कहने वाली चिन्तनाएँ पैदा होने लगीं। राज उनका यही है कि अगर जगत् को हम सपने की भाँति देखने लगें तो हम साक्षी हो जायें। सपने में कभी भी कोई पार्टीसिपेण्ट नहीं होता। हमेशा विटनेस होता है। कभी भी, किसी भी स्थिति में आप सपने में पात्र नहीं होते। भले ही आपको पात्र दिखायी पड़ें, आप; लेकिन आप तो वही हैं, जिसको दिखायी पड़ता है, आप हमेशा ही देखने वाले होते हैं, दर्शक होते हैं।

जितने अनुभव होंगे, बीज के होंगे, शरीर-रहित होंगे, स्वप्न जैसे होंगे। जिनके अनुभवों ने दुख को निर्मित किया है वह नरक के स्वप्न देखेंगे। नाइटमेयर्स देखेंगे। जिनके अनुभवों ने सुख को अर्जित किया है, वह स्वर्ग देखते रहेंगे, सुखद होंगे सपने उनके। लेकिन ये सब सपने जैसे अनुभव होंगे। कभी-कभी इसमें और घटनाएँ घटेंगी। उन घटनाओं के अनुभव में भेद पड़ेगा।

कभी कभी ऐसा होगा कि ये आत्माएँ जो न गतिमान हैं, न चलित हैं ये आत्माएँ कभी-कभी किन्हीं शरीरों में प्रवेश कर जायेंगी। अब यह भाषा की ही भूल है कहना, कि प्रवेश कर जायेंगी। उचित होगा ऐसा कहना कि कभी-कभी कोई शरीर इनको अपने में प्रवेश दे देगा। इन आत्माओं का लोक कुछ हमसे भिन्न नहीं है। ठीक हमारे निकट और पड़ोस में हैं। ठीक हम एक ही जगत् में अस्तित्व-वान है (यहाँ इंच-इंच जगह भी आत्माओं से भरी हुई है। यहाँ जो हमें खाली जगह दिखायी पड़ती है वह भी भरी हुई है)। अगर कोई भी शरीर किसी गहरी रिसेप्टिव हालत में हो, और दो तरह के शरीर, ग्राहक अवस्था में होते हैं। एक तो बहुत भयभीत अवस्था में। यानी जितना भयभीत व्यक्ति हो उसकी खुद की आत्मा उसके शरीर में भीतर सिकुड़ जाती है। सिकुड़ जाती है, मतलब शरीर के बहुत हिस्सों को छोड़ देती है खाली। उन खाली जगहों में पास-पड़ोस की कोई भी आत्मा ऐसी बह सकती है जैसे गड्ढे में पानी है। तब इसको जो अनुभव होते हैं ठीक वैसे हो जाते हैं जैसे शरीरधारी आत्मा को हो जाते हैं। दूसरा बहुत गहरी प्रार्थना के क्षण में कोई आत्मा प्रवेश करती है। बहुत गहरी प्रार्थना के क्षण में भी आत्मा सिकुड़ जाती है। लेकिन भय की हालत में केवल वे ही आत्माएँ सरक

कर भीतर प्रवेश कर सकती हैं जो दुख स्वप्न देखती हैं। जिन्हें हम बुरी आत्माएँ कहें, वे प्रवेश कर सकती हैं। क्योंकि भयभीत व्यक्ति बहुत ही कुरूप और गन्दी स्थिति में है। उसमें कोई श्रेष्ठ आत्मा प्रवेश नहीं कर सकती। और भयभीत व्यक्ति गड्ढे की भाँति है जिसमें नीचे उतरने वाली आत्माएँ ही प्रवेश कर सकती हैं। प्रार्थना से भरा हुआ व्यक्ति शिखर की भाँति है जिसमें सिर्फ ऊपर चढ़ने वाली आत्माएँ प्रवेश कर सकती हैं। प्रार्थना से भरा हुआ व्यक्ति इतनी आन्तरिक सुगन्ध से और सौन्दर्य से भर जाता है कि उनका रस तो केवल बहुत श्रेष्ठ आत्माओं को हो सकता है, तो जिसको इनवोकेशन कहते हैं, आह्वान कहते हैं, प्रार्थना कहते हैं उससे भी प्रवेश होता है, लेकिन श्रेष्ठतम आत्माओं का। उस समय अनुभव ठीक वैसे ही हो जाते हैं जैसे कि शरीर रहते हुए होते हैं, इन दोनों अवस्थाओं में। तो जिनको देवताओं का आह्वान कहा जाता रहा है उसका पूरा विज्ञान हैं। ये देवता कहीं आकाश से नहीं आते। जिन्हें भूत प्रेत कहा जाता रहा, वे भी किन्हीं नरकों से किन्हीं प्रेत-लोकों से नहीं आते। वे सब मौजूद हैं, यहीं हैं।

असल में एक ही स्थान पर मल्टी डाइमेंशनल एक्जीस्टेंस है। एक ही बिन्दु पर बहुआयामी अस्तित्व है। अब जैसे यह कमरा है, यहाँ हम बैठे हैं। हवा भी है यहाँ। यहाँ कोई धूप जला दे तो सुगन्ध भी भर जायेगी, यहाँ कोई गीत गाने लगे तो ध्वनि तरंगें भी भर जायेंगी। धूप का कोई भी कण ध्वनि तरंग के किसी भी कण से नहीं टकरायेगा। इस कमरे में संगीत भी भर सकता है, प्रकाश भी भरा है। लेकिन प्रकाश की कोई तरंग, संगीत की किसी तरंग से टकरायेगी नहीं। और न संगीत के भरने से प्रकाश की तरंगों को बाहर निकलना पड़ेगा या जगह खाली करनी पड़ेगी। असल में इसी स्थान को ध्वनि की तरंगें एक आयाम में भरती हैं और प्रकाश की तरंगें दूसरे आयाम में भरती हैं। वायु की तरंगें तीसरे आयाम में भरती हैं और इस तरह से हजार आयाम इसी कमरे को हजार तरह से भरते हैं। एक दूसरे में कोई बाधा नहीं पड़ती। एक दूसरे को एक दूसरे के लिए कोई स्थान खाली नहीं करना पड़ता। इसलिए स्पेस जो है, मल्टीडायमेंशनल है। यहाँ हमने एक टेबल रखी है, अब दूसरी टेबल नहीं रख सकते इस जगह। क्योंकि एक टेबल एक ही आयाम में बैठती है। जब इस टेबल को रख दिया, तो अब इस स्थान पर यानी इसी टेबल के स्थान पर दूसरी टेबल नहीं रख सकते। वह इसी आयाम की है। लेकिन दूसरे आयाम का अस्तित्व उस टेबल की वजह से कोई बाधा नहीं पायेगा। ये सारी आत्माएँ ठीक हमारे निकट हैं। और कभी भी इनका प्रवेश हो सकता है। जब इनके प्रवेश होंगे तब ही इनके अनुभव होंगे। वह ठीक वैसे ही हो जायेंगे, जैसे शरीर में प्रवेश पर होते हैं।

दूसरी बात, जब ये व्यक्तियों में प्रवेश कर जायँ तब ये वाणी का उपयोग कर सकते हैं। तब संवाद सम्भव है। इसलिए आज तक पृथ्वी पर कोई प्रेत या कोई देव प्रत्यक्ष, या सीधा कुछ भी संवादित नहीं कर पाया है। लेकिन ऐसा नहीं है कि संवाद नहीं हुआ। संवाद हुए हैं। और देवलोक या प्रेतलोक के सम्बन्ध में, स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध में जो भी हमारे पास सूचनाएँ हैं वह काल्पनिक लोगों के द्वारा नहीं हैं, वह इन लोकों में रहने वाले लोगों के ही द्वारा हैं। लेकिन किसी के माध्यम से है। इसलिए बहुत पुराने दिनों से जो व्यवस्था थी वह यह थी—जैसे कि वेद हैं—तो वेद का कोई ऋषि नहीं कहेगा कि हम इनके लेखक हैं। वह हैं भी नहीं। इसमें कोई विनम्रता कारण नहीं है कि वह विनम्रतावश कहते हैं कि हम लेखक नहीं हैं। इसमें तथ्य है। ये जो कही गयी बातें हैं, यह उन्होंने कही नहीं हैं, किसी और आत्मा ने उनके द्वारा कहलवायी हैं। और यह अनुभव बड़ा साफ होता है। जब कोई और आत्मा तुम्हारे भीतर प्रवेश करके बोलेगी तब यह अनुभव इतना साफ है कि तुम पूरी तरह जानते हो कि तुम अलग बैठे हो, तुम बोल ही नहीं रहे हो, कोई और ही बोल रहा है। तुम भी सुनने वाले हो, बोलने वाले नहीं हो। वैसे बाहर से पता चलाना मुश्किल होगा, लेकिन बाहर से भी जो लोग ठीक से कोशिश करें तो बाहर से भी पता चलेगा। क्योंकि आवाज का ढंग बदल जायगा, टोन बदल जायेगी, शैली बदल जायेगी, भाषा भी बदल जाती है। उस व्यक्ति को तो भीतर बहुत ही साफ मालूम पड़ेगा : अगर प्रेत आत्मा ने प्रवेश किया है तो शायद वह इतना भयभीत हो जाय कि मूच्छित हो जाय, लेकिन अगर देव आत्मा ने प्रवेश किया है तो वह इतना जागरूक होगा जितना कि कभी भी नहीं था; और तब स्थिति बहुत साफ इसे दिखायी पड़ेगी। तो जिनमें प्रेतात्माएँ प्रवेश करेंगी वह तो प्रेतात्माओं के जाने के बाद ही कह सकेंगे कि कोई हममें प्रवेश कर गया। वे इतने भयभीत हो जायेंगे कि मूच्छित हो जायेंगे। लेकिन जिनमें दिव्य आत्मा प्रवेश करेगी, वे उसी क्षण भी कह सकेंगे कि यह कोई और बोल रहा है, यह मैं नहीं बोल रहा। यह दो आवाजें एक ही उपकरण का उपयोग करेंगी, जैसे एक ही माइक्रोफोन का दो आदमी एक साथ उपयोग कर रहे हों। एक चुप खड़ा रह जाय और दूसरा बोलना शुरू कर दे। जब शरीर की इन्द्रियों का ऐसा उपयोग हो तब संवाद हो पाता है। इसलिए देवताओं के, प्रेत के सम्बन्ध में जो भी उपलब्ध है जगत् में, वह संवादित है। वह कहा गया है। और कोई जानने का उपाय तो नहीं है, वही उपाय है। और इन सबके पूरे के पूरे विज्ञान निर्मित हो गये हैं। और जब विज्ञान पूरा निर्मित होता है तो बड़ी आसानी हो जाती है। तब इन चीजों को समझ-बूझ पूर्वक उपयोग कर सकते हैं। जब विज्ञान

नहीं होता तब समझ-बूझपूर्वक उपयोग नहीं कर सकते। कभी घटनाएँ घटीं तो इनका ठीक विज्ञान तय हो गया था। जैसे कोई दिव्य आत्मा किसी में प्रवेश कर गयी है आकस्मिक रूप से, तो धीरे-धीरे इसका विज्ञान निर्मित कर लिया गया कि किन परिस्थितियों में वह दिव्य आत्मा प्रवेश करती है। वे परिस्थितियाँ अगर पैदा की जा सकें तो वह फिर प्रवेश कर सकेंगी।

अब जैसे मुसलमान लोभान जलायेंगे। वह किन्हीं विशेष दिव्य आत्माओं के प्रवेश करने के लिए सुगन्ध के द्वारा वातावरण निर्मित करना है। हिन्दू धूप जलायेंगे, या घी के दिये जलायेंगे। ये आज सिर्फ औपचारिक हैं, लेकिन कभी उनके कारण थे। एक विशेष मन्त्र बोलेंगे। विशेष मन्त्र इनवोकेशन बन जाता है। इसलिए जरूरी नहीं है कि मन्त्र में कोई अर्थ हो, अक्सर नहीं होता। क्योंकि अर्थ वाले मन्त्र विकृत हो जाते हैं। अर्थहीन मन्त्र विकृत नहीं होते। अर्थ में आप कुछ और भी प्रवेश कर सकते हैं। समय के अनुसार उसका अर्थ बदल सकता है, लेकिन अर्थहीन मन्त्र में आप कुछ भी प्रवेश नहीं करवा सकते हैं, समय के अनुसार कोई अर्थ नहीं बदलता। इसलिए जितने गहरे मन्त्र हैं वह अर्थहीन हैं, मीनिंगलेस हैं। उसमें कोई अर्थ नहीं है जिससे कि युग के अनुसार कोई फर्क पड़ेगा। सिर्फ ध्वनियाँ हैं। और ध्वनि उच्चारण की एक व्यवस्था है, उसी ध्वनि से उसका उच्चारण होना चाहिए। उतनी ही चोट, उतनी ही तीव्रता, उतना उतार-चढ़ाव, उतनी चोट होने पर वह आत्मा तत्काल प्रवेश हो सकेगी। अथवा वह आत्मा खो गयी होगी तो उस जैसी कोई अन्य आत्मा प्रवेश हो सकेगी।

दुनिया के सारे धर्मों के जो मन्त्र हैं, जैसे कि जैनों का नमोकार है। उसके पाँच हिस्से हैं और प्रत्येक हिस्से पर जो इनवोकेशन है, जो आवाहन है, वह गहरा होता जाता है। प्रत्येक पद पर आवाहन गहरा होता जाता है। और गहरी आत्माओं के लिए होता चला जाता है। साधारणतः जैसा लोग समझते हैं, वैसा आज चलता है, कि पूरे नमोकार को पढ़ेंगे—यह ठीक स्थिति नहीं है। जिसको पहले पद से सम्बन्ध जोड़ना है उसको पहले पद को ही दोहराना चाहिए। बाकी चार को बीच में लाने की जरूरत नहीं है। उस एक पर ही जोर देना चाहिए। क्योंकि उस पद से सम्बन्धित आत्माएँ बिलकुल अलग हैं। जैसे, नमो अरिहन्ताणम्। उसमें अरिहन्त के लिए नमस्कार है। अब 'अरिहन्त' विशेष रूप से जैनों का शब्द है। जिसने अपने समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दिया, अरिहन्तहार। 'अरि' का अर्थ है शत्रु, 'हंत' जिसने मार डाले। तो वह ऐसी आत्मा के लिए पुकार है जो अपनी इन्द्रियों को बिलकुल ही समाप्त करके विदा हुई। यह, उस आत्मा के लिए पुकार है जिसका सिर्फ एक ही जन्म हो सकता है। इस एक ही पद को दोहराना है विशेष

ध्वनि और चोट के साथ। यह बहुत स्पेसिफिक पुकार है, विशेष पुकार है। इस पुकार के द्वारा इतर जैन दिव्य आत्मा से सम्बन्ध नहीं होता। यह एक पारिभाषिक शब्द है जो सिर्फ जैन दिव्य आत्मा से सम्बन्ध जुड़ा पायेगा। इसमें क्राइस्ट से सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसमें आकांक्षा नहीं है। इसमें बुद्ध से सम्बन्ध नहीं हो सकता। यह पारिभाषिक शब्द है, यह पारिभाषिक आत्मा के लिए पुकार है। ठीक ऐसे, अलग-अलग पूरे पाँच हिस्सों में पाँच अलग तरह की आत्माओं के लिए पुकार है। अन्तिम जो पुकार है 'नमो लोए सव्व साहूणं' वह समस्त साधुओं को नमस्कार है। उसमें विशेष पुकार नहीं है। उसमें साधु आत्मा मात्र के लिए आवाहन है। उसमें जैन और इतर जैन का प्रश्न है। वह किसी भी साधु आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने की आकांक्षा है। वह बड़ी जनरलाइज्ड पुकार है। कोई विशेष निमन्त्रण नहीं है उस पर।

सारी दुनिया के धर्मों के पास ऐसे मन्त्र हैं जिनसे सम्बन्ध जोड़ा जाता रहा। और तब वह शक्ति-मन्त्र बन गये। उनकी बड़ी महत्ता हो गयी। वह नाम की तरह है। जैसे आपका नाम रख दिया 'राम'। फिर राम की आवाज दी तो आप चौकन्ने हो गये। ऐसे ही सारे मन्त्र हैं। प्रेतात्माओं के लिए भी वैसे ही मन्त्र हैं। दोनों का अपना शास्त्र है। व्यक्ति तो खोते चले जायेंगे, आत्माएँ बदलती चली जायेंगी। लेकिन ताल-मेल खाती आत्माएँ सदा उपलब्ध रहेंगी, जिनसे सम्बन्ध जोड़ा जा सके। इस स्थिति में संवाद हो सकता है।

अब मुहम्मद को लीजिये। मुहम्मद ने सदा यही कहा कि मैं सिर्फ पैगम्बर हूँ, सिर्फ पैगाम दे रहा हूँ। मेसेंजर। क्योंकि मुहम्मद को कभी ऐसा नहीं लगा कि जो वह दे रहे हैं वह उनका है। इतनी साफ आवाज ऊपर से आयी, जिसे मुसलमान इलहाम कहते हैं, रिवील हुआ,—कि कोई अन्य भीतर प्रवेश कर गया, और बोलना शुरू कर दिया। खुद मुहम्मद को भरोसा नहीं आया—कि यह मैं बोल रहा हूँ, कोई मेरी मानेगा ? क्योंकि कभी मैंने बोला नहीं, मेरा कोई परिचय नहीं है लोगों से ऐसा। लोग जानते नहीं हैं कि मैं इस तरह की बात बोल सकता हूँ इसलिए कोई मेरा मानने वाला नहीं है। इसलिए मुहम्मद डरे हुए घर लौटे। और रास्ते में बचे हुए घर आये कि कहीं किसी से बोल न लें, अन्यथा अविश्वास के सिवाय कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि पीछे कोई भी तो आधार नहीं है, पृष्ठभूमि नहीं है। तो आकर पहले सिर्फ अपनी पत्नी से कहा, और उससे भी कहा कि तुझे भरोसा हो तो करना, नहीं भरोसा हो तो मत करना। और तुझे भरोसा आ आ जाय तो फिर मैं किसी और से कहूँ, अन्यथा नहीं कह सकता। क्योंकि जो हुआ है, जो आया है, ऊपर से आया है; वह कोई बोल गया है। वह मेरी नहीं है

आवाज ! सिर्फ शब्द मेरे हैं, बोल कोई और रहा है। जब पत्नी को भरोसा आया, तो फिर और निकट के किसी से कहा।

मूसा के साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ। वाणी उतरी। यह जो वाणियों का उतरना है, वह किसी और बड़ी दिव्य आत्मा के द्वारा किसी का प्रयोग करना है। हर किसी का प्रयोग नहीं हो सकता, उसी का प्रयोग हो सकता है ऐसी विहिकल, वाहन बनने की पवित्रता जिसमें हो। छोटी घटना नहीं है यह। उतनी पात्रता तो चाहिए ही। उतनी ही पवित्रता चाहिए। तब संवाद हुआ। संवाद तो हो सकता है, लेकिन तब दूसरे के शरीर का उपयोग करना पड़ेगा। अभी इस तरह की कोशिश कृष्णमूर्ति के साथ चली, जो असफल हुई।

बुद्ध का एक अवतार होने की बात है—मैत्रेय। बुद्ध ने कहा कि मैं मैत्रेय के नाम से एक बार और लौटूंगा। बहुत वक्त हो गया, ढाई हजार साल हो गये हैं। और ऐसी प्रतीति है कि कोई योग्य गर्भ नहीं उपलब्ध हो रहा है और मैत्रेय जन्म लेना चाहता है। तब एक दूसरी कोशिश करने की व्यवस्था की गयी कि गर्भ अगर नहीं मिल सकता है तो कोई एक व्यक्ति को विकसित किया जाय और उस व्यक्ति के माध्यम से वह बोल डाले। इसके लिए बड़ा आयोजन चला। सारी थियोसफी का, पूरा का पूरा आन्दोलन सिर्फ एक काम के लिए निर्मित हुआ है कि वह उतना काम कर दे, कि एक ऐसे व्यक्ति को खोज कर तैयार कर दे सब तरह से, जो एक विहिकल बन जाय। मुहम्मद से जो आत्मा संदेश देना चाहती थी उसको यह तकलीफ नहीं हुई, विहिकल बनाना नहीं पड़ा, तैयार ही मिला। मूसा से जिस आत्मा ने संदेश दिया उसको भी वाहन बनाने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ी। वाहन मिल गया। बहुत सरल युग थे। वाहन मिलना कठिन नहीं था। अहंकार इतना कम था, इतनी विनम्रता से समर्पण हो सकता था कि कोई दूसरा उपयोग कर ले शरीर का और कोई हट जाय ; बिलकुल ऐसे ही जैसे उसका शरीर है ही नहीं। अब यह असम्भव हो गया। इंडीवीजुअलिटी प्रगाढ़ है। व्यक्ति-अहंकार है। कोई इंच भर नहीं हट सकता। कठिन है मामला। तो व्यक्ति तैयार कर लिया गया। थियोसाफिस्टों ने तीन-चार छोटे बच्चों को चुना, क्योंकि पक्का भरोसा नहीं कि किस बच्चे का भविष्य क्या हो जाय। उन्होंने कृष्णमूर्ति को चुना, उनके एक भाई नित्यानन्द को चुना। कृष्ण मैनन को भी पीछे चुना, एक और व्यक्ति जार्ज अरंडेल को भी चुना। नित्यानन्द की तो मृत्यु हुई अति चेष्टा करने से, दुर्घटना हुई। नित्यानन्द पर इतनी चेष्टा की गयी, कृष्णमूर्ति के भाई पर कि वह ठीक माध्यम बन जाय मैत्रेय का संदेश देने का। उस चेष्टा में ही उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु से कृष्णमूर्ति को इतना धक्का पहुँचा कि उनके लिए माध्यम बनने में

भी बाधा पड़ी। कृष्णमूर्ति को नौ साल की उम्र में एनीबेसेन्ट और लीड बीटर ने लिया। लेकिन यह एक मजे का खेल है, जगत् एक बड़ा ड्रामा है। छोटी शक्तियों का खेल नहीं, बड़ी शक्तियों का खेल है। जब मैत्रेय की आत्मा की सम्भावना बढ़ने लगी कि हो सकता है कृष्णमूर्ति में उतर जाय, तो देवव्रत नाम का व्यक्ति, जिसने बुद्ध का जीवन-भर विरोध किया, बुद्ध के जीवन में बुद्ध की हत्या की अनेक कोशिशें कीं जो बुद्ध का चचेरा भाई था, उसकी आत्मा कृष्णमूर्ति के पिता पर हावी हो गयी। और एक मुकदमा चला जो प्रिवीकौंसिल तक गया। यह बात कभी नहीं कही गयी है, यह मैं पहली दफा कह रहा हूँ। कृष्णमूर्ति के पिता के द्वारा यह दावा करवाया गया कि उसके बच्चे पर जबरदस्ती इन लोगों ने कब्जा कर लिया है और उसे वह वापस चाहते हैं। नाबालिग बच्चा है। एनीबीसेन्ट ने जी-जान लगाकर वह संघर्ष किया। फिर भी नियमानुसार वह जीत नहीं सकती थी। क्योंकि नाबालिग बच्चे पर बाप का हक था। अगर बच्चा भी कहे तो भी कोई अर्थ नहीं था, क्योंकि वह नाबालिग था, उसकी बात का कोई मतलब नहीं हो सकता था। इसलिए कृष्णमूर्ति को लेकर हिन्दुस्तान के बाहर भाग जाना पड़ा। इधर मुकदमा चलाया गया, उधर उसे लेकर भाग जाना पड़ा। इधर मुकदमा चला, उधर एनीबेसेन्ट। लेकिन तब तक कृष्णमूर्ति को बाहर निकाल लिया गया। मुकदमा सुप्रीम कोर्ट में चला। वहाँ से भी एनीबेसेन्ट हारी, क्योंकि वह तो कानूनी मामला था। देवदत्त के हाथ में ज्यादा ताकत थी। अक्सर ऐसा होता है कि बुरे आदमियों के हाथ में कानून अधिक सहयोगी हो जाता है। क्योंकि अच्छा आदमी कानून की फिक्र नहीं करता। बुरे आदमी कानून का पहले इन्तजाम कर लेते हैं। फिर वह प्रिवी कौंसिल में गया। और प्रिवी कौंसिल ने, सब कानून को तोड़कर निर्णय दिया कि वह एनीबेसेन्ट के पास जाय। इसके लिए कोई प्रिसीडेंट नहीं था। यह बिलकुल न्यायोचित नहीं थी घटना। इसके लिए कोई नियम नहीं था, यह बिलकुल ही गैरकानूनी था फैसला। लेकिन प्रिवी कौंसिल के ऊपर तो कोई उपाय नहीं था। यह निर्णय भी मैत्रेय की आत्मा के द्वारा ही सम्भव हुआ, नहीं तो संभव नहीं हो सकता था। इसलिए छोटी कोर्ट्स में इसकी कोशिश नहीं की गयी, क्योंकि उनके ऊपर बड़ी कोर्ट थी, आखिरी कोर्ट में ही उपयोग किया गया और आखिरी अदालत के लिए रोक कर रखा गया।

यह नीचे के तल पर तो एक खेल था, जो इधर दिखायी पड़ रहा था, अखबारों में चल रहा था, अदालतों में मुकदमा लड़ा जा रहा था। यह ऊपर के तल पर भी शक्तियों का एक संघर्ष था। फिर कृष्णमूर्ति पर जितनी मेहनत की गयी, उतनी शायद ही कभी किसी व्यक्ति पर की गयी। व्यक्तियों ने खुद की है अपने

ऊपर, इससे भी ज्यादा मेहनत की है, लेकिन दूसरे लोगों ने किसी पर इतनी मेहनत की हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। पर सारी मेहनत के बावजूद भी बात बिगड़ गयी ऐन वक्त पर। थियोसोफिस्ट ने सारी दुनिया से छः हजार लोगों को हॉलैण्ड में इकट्ठा कर रखा था और घोषणा होने वाली थी कि कृष्णमूर्ति उस दिन अपने व्यक्तित्व को छोड़ देंगे और मैत्रेय के व्यक्तित्व को स्वीकार कर लेंगे। सारी तैयारियाँ हो गयी थीं। आखिरी इंच की घोषणा थी, एक बिन्दु की बात थी कि मंच पर खड़े होकर वह कहेंगे कि अब मैं कृष्णमूर्ति नहीं हूँ, बस इतनी ही घोषणा बाकी थी। सारी भीतरी तैयारी पूरी थी कि वे इतना कह देंगे कि अब मैं कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व को इनकार करता हूँ और खाली बैठ जायेंगे, ताकि मैत्रेय की आत्मा प्रवेश हो जाय और बोलना शुरू कर दें। सारी दुनिया से छः हजार लोग जो समझते थे और उत्सुक थे, प्यासे थे, वह इकट्ठे हुए थे दूर-दूर से आकर, इस घटना को देखने के लिए और मैत्रेय की आवाज को सुनने के लिए। एक अनूठी घटना होने वाली थी। लेकिन कुछ नहीं हुआ—और ऐन वक्त पर कृष्णमूर्ति ने इनकार कर दिया। देवदत्त ने फिर धक्का दिया। वह जो प्रिवी कौंसिल में नहीं हो सका था, वह अन्ततः आखिरी अदालत में हार गया। देवदत्त ने धक्का देकर ऐन वक्त पर कृष्णमूर्ति से इनकार करवा दिया कि मैं कोई शिक्षक नहीं हूँ, मैं कोई जगत्गुरु नहीं हूँ, किसी की आत्मा से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं मैं हूँ और जो मुझे कहना था वह कह दिया।

बहुत बड़ा प्रयोग असफल हुआ है, पर एक अर्थ में पहला प्रयोग था उस तरह का, और असफल होने की ज्यादा सम्भावना थी। उस तल पर आत्माएँ संवाद नहीं कर सकती हैं, जब तक वह किसी के शरीर को न ग्रहण कर लें। और उस बीच में उनकी कोई प्रगति नहीं होती। इसीलिए मनुष्य-जन्म फिर अनिवार्य है। जैसे आज कोई मरा और सौ साल तक वह अशरीरी हालत में रहे तो इन सौ साल में किसी तरह का विकास ही नहीं होता। वह जहाँ मरा था पिछले जन्म में, ठीक वहीं से नये जन्म में प्रवेश करेगा, चाहे कितने ही समय बाद प्रवेश करे। यह विकास का काल नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे रात जहाँ आप सोते हैं, सुबह आप वहीं उठते हैं। नींद कोई विकास का काल नहीं है। इसलिए अगर बहुत-से धर्म नींद के खिलाफ हो गये तो उसका कारण था, वे उसको कम करने में लग गये। क्योंकि उसमें कोई विकास नहीं होता। जहाँ आप थे, सुबह आप वहीं उठते हैं। ऐसे दो शरीरों के बीच, जहाँ से आप मरे थे, वहीं आप जन्मते हैं। आपकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। बिलकुल ऐसे, जैसे हमने एक घड़ी बन्द कर दी अभी और अब जब हम दुबारा शुरू करेंगे तो वह वहीं से शुरू हो जायेगी जहाँ हमने बन्द की थी।

बीच में सब विकास अवरुद्ध है। इसीलिए कोई भी देव-योनि से मोक्ष नहीं पा सकता। देव-योनि से मोक्ष न पाने का कुल कारण इतना है कि देव-योनि में कोई कर्मयोनि नहीं है। आप कुछ कर नहीं सकते हैं। कुछ हो नहीं सकता। सपने देख सकते हैं, अंतहीन सपने देख सकते हैं। मनुष्य होने के लिए लौटना ही पड़ेगा।

परिचय की जहाँ तक बात है, दो प्रेतात्माएँ भी अगर परिचित होना चाहें तो भी दो व्यक्तियों में प्रवेश करके ही परिचित हो सकती हैं। सीधे परिचित नहीं हो सकतीं। करीब-करीब ऐसी हालत है, जैसे हम बीस आदमी इस कमरे में सो जायँ। हम बीस रात भर यहीं होंगे। लेकिन नींद मे हम परिचित नहीं हो सकते। हमारा जो परिचय है वह जागने पर ही होगा। जब हम जागेंगे तो फिर कन्टीन्यू हो जायेंगे, लेकिन नींद में हम परिचित नहीं हो सकते। तब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता। हाँ, यह हो सकता है कि एक आदमी जाग जाय, वह सबको देख ले। इसका मतलब यह है कि अगर एक आत्मा किसी के शरीर में प्रवेश कर जाय, तो वह आत्मा इन सारी आत्माओं को देख सकती है। फिर भी वे आत्माएँ उसे नहीं देखेंगी। और अगर एक आत्मा किसी के शरीर में प्रवेश कर जाय तो वह वह दूसरी आत्माओं को, गो कि अशरीरी हैं, उनके बाबत कुछ जान सकती है। लेकिन वे आत्माएँ उसके बाबत कुछ भी नहीं जान सकतीं। असल में जानना जो है, परिचय जो है, वह भी जिस मस्तिष्क से सम्भव होता है वह भी शरीर के साथ विदा हो जाता है। हाँ, कुछ सम्भावनाएँ फिर भी शेष रह जाती हैं जो कि हो सकती हैं। जैसे अगर किसी व्यक्ति ने जीते-जी मस्तिष्क मुक्त टेलीपैथी या क्लेवायंस के सम्बन्ध निर्मित किये हों, किसी व्यक्ति ने जीते-जी मस्तिष्क के बिना जानने के मार्ग निर्मित कर लिये हों तो वह प्रेत या देव-योनि में भी जा सकेगा। पर ऐसे बहुत कम लोग हैं। इसलिए जिन आत्माओं ने कुछ खबरें दी हैं उस लोक की आत्माओं की बाबत, वे उस तरह की आत्माएँ हैं। यह स्थिति ऐसी है कि जैसे बीस आदमी शराब पी लें, सब बेहोश हो जायें, लेकिन एक आदमी ने शराब पीने का इतना अभ्यास किया हो कि कितनी ही शराब पी ले और बेहोश न हो, तो वह शराब पी कर भी होश में बना रहेगा। जो व्यक्ति शराब पीकर भी होश में बना रह सकता है, वह शराब के अनुभव के सम्बन्ध में ऐसा कुछ कह सकता है जो बेहोश रहने वाले नहीं कह सकते। क्योंकि वह जानने के पहले ही बेहोश हो गये होते हैं।

इस तरह के भी छोटे-छोटे संगठन काम करते रहे हैं दुनिया में जो कुछ लोगों को तैयार करते हैं कि वह मरने के बाद जो लोक होगा, उस लोक के सम्बन्ध में कुछ जानकारी दे सकें। जैसे लंदन में एक छोटी-सी संस्था थी। ओलिवर लाज जैसे लोग उसके सदस्य थे। उन्होंने पूरी कोशिश की जब ओलिवर लाज मरा,

कि मरने के बाद वह खबर भेज सके। लेकिन बीस साल तक मेहनत करने पर भी कोई खबर न मिल सकी। ऐसी सम्भावना मालूम होती है कि ओलिवर लाज ने भी बहुत कोशिश की, क्योंकि कुछ और आत्माओं ने खबर दी कि ओलिवर लाज पूरी कोशिश कर रहा है। लेकिन कोई ट्यूनिंग नहीं बैठ पायी। बीस साल निरन्तर, बहुत दफा ओलिवर लाज ने खटखटाया उन लोगों को, जिनसे उसने वायदा किया था कि मैं खबर भेजूंगा। मैं मरते ही पहला काम यह करूँगा कि कुछ खबर दूं। उसकी सारी तैयारी करवायी गयी थी कि वह खबर दे सकेगा। ऐसा होता था जैसे नींद में सोये आदमी को वह हड़बड़ा दे, घबड़ाकर उसका साथी बैठ जायगा। ऐसा लगेगा कि ओलिवर लाज कहीं पास में है। लेकिन ट्युनिंग नहीं बैठ पायी। ओलिवर लाज तैयार गया, लेकिन कोई दूसरा आदमी तैयार नहीं था इस योग्य जो ओलिवर लाज कुछ कहे तो उसे पकड़ ले। बीस साल निरन्तर चेष्टा करता रहा। न मालूम कितनी दफा ऐसा होता कि रास्ते में अकेले कोई जाय, एकदम कोई कंधे पर कोई हाथ रख दे। मित्र जो कि ओलिवर लाज के हाथ के स्पर्श को जानते थे वह एकदम चौंक कर कहेंगे कि लाज, लेकिन फिर बात खो जाती है। इसकी बहुत कोशिश चली, बीस साल,—उसके साथी तो सब घबड़ा गये और परेशान हो गये कि यह क्या हो रहा है। लेकिन कोई संदेश, एक भी संदेश नहीं दिया जा सका, हालाँकि उसने द्वार बहुत खटखटाये।

दोहरी तैयारी चाहिए। अगर टेलीपैथी का ठीक अनुभव हुआ हो जीते-जी, बिना शब्द के बोलने की क्षमता आयी हो, बिना आँख के देखने की क्षमता आयी हो, तब उस योनि में उस तरह का व्यक्ति बहुत चीजें जान सकेगा। जानना भी सिर्फ हमारे होने पर निर्भर नहीं होता है। जैसे एक बगीचे में जायँ, एक वनस्पति-शास्त्री भी उस बगीचे में जाय, एक कवि भी उस बगीचे में जाय, एक दूकानदार भी उस बगीचे में जाय, एक छोटा बच्चा भी उस बगीचे में जाय। वे सभी एक ही बगीचे में जाते हैं, लेकिन एक ही बगीचे में नहीं जाते हैं। बच्चा तितलियों के पीछे भागने लगता है, दूकानदार बैठ कर अपनी दूकान की बात सोचने लगता है। उसे न फूल दिखायी पड़ते हैं न कविता दिखायी पड़ती है। कवि फूलों में अटक जाता है और कविताओं में खो जाता है। वनस्पति-शास्त्री कुछ जानता है। उसकी ट्रेनिंग है भारी—पचास साल या बीस साल या तीस साल उसने वनस्पति की जो जानकारी ली है, वही वहाँ से बोलना शुरू कर देता है। एक एक जड़, एक-एक पत्ता और एक-एक फूल उसे दिखायी पड़ने लगता है, जो उनमें से किसी को दिखायी नहीं पड़ सकता। ठीक इसी प्रकार उस लोक में भी, जो ऐसे ही मर जाते हैं इस जीवन में शरीर के अतिरिक्त बिना कुछ जाने, उनका तो कोई परिचय, कोई सम्बन्ध

कुछ नहीं हो पाता। वह तो एक कोमा में, गहरी तन्द्रा में पड़े रह कर नये जन्म की प्रतीक्षा करते हैं। लेकिन जो कुछ तैयारी करके जाते हैं वे कुछ कर सकते हैं। इसकी तैयारी के भी शास्त्र हैं। और मरने से पहले अगर कोई वैज्ञानिक ढंग से मरे, विज्ञानपूर्वक मरे, और मरने की पूरी तैयारी करके न मरे, पूरा पाथेय लेकर, मरने के बाद के पूरे सूत्र लेकर कि क्या-क्या करेगा, तो बहुत काम कर सकता है। विराट् अनुभव की सम्भावनाएँ वहाँ हैं। लेकिन साधारणतः नहीं। साधारणतः आदमी मरा, अभी जन्म जाय कि वर्षों बाद जन्मे, वह इस बीच से कुछ भी लेकर, कुछ भी करके नहीं जाता। इसलिए सीधे संवाद की कोई सम्भावना नहीं है।

प्रश्न : इधर कुछ समय से मैं ऐसा महसूस कर रहा हूँ कि आप किसी जल्दी में हैं। वह जल्दी क्या है, यह जानने में असमर्थ हूँ। लेकिन जल्दी है जरूर और इसकी पुष्टि होती है इधर जनवरी और फरवरी महीनों में अपने कुछ प्रेमियों को लिखे गये आपके पत्रों से। प्रश्न उठता है कि जिस कारणवश आपको जन्म धारण करना पड़ा, क्या वह कार्य आप पूरा कर चुके हैं ? यदि पूरा कर चुके हैं तो आपके उस कथन का क्या होगा जिसमें आपने कहा था कि मैं गाँव-गाँव चुनौती देते हुए घूमूँगा और मुझे कोई आँख मिल जायेगी जो दिया बन सकती है, तो उस पर मैं अपना पूरा श्रम करूँगा। मरते वक्त मैं कहीं यह न कहूँ कि सौ आदमियों को खोजता था, वे मुझे नहीं मिले।

उत्तर : जल्दी है। जल्दी दो तीन कारणों से है। एक तो कितना भी समय हो तो भी सदा कम है। कितना भी समय हो और कितनी भी शक्ति हो तो भी सदा कम है। क्योंकि काम सदा सागर-जैसा है। शक्ति, समय, अवसर सब चुल्लुओं जैसा है। फिर बुद्ध हों कि महावीर, कृष्ण हों कि क्राइस्ट चुल्लु से ज्यादा मेहनत नहीं हो पाती और काम सदा सागर-जैसा फैला रहता है। इसलिए जल्दी तो सदा ही है। यह तो सामान्य जल्दी है जो होगी ही। दूसरे भी एक कारण से जल्दी है। कुछ समय तो बहुत स्थिर होते हैं जहाँ चीजें मन्द गति से चलती हैं। जितने हम पीछे जायेंगे, उतना हम पायेंगे कि मन्द गति से चलने वाला समय था। कुछ युग अति तीव्र होते हैं, जहाँ चीजें बहुत तीव्रता से जाती हैं। आज हम ऐसे ही समय में हैं जहाँ सब चीजें तीव्रता में हैं, जहाँ कोई भी चीज स्थिर नहीं है। धर्म अगर पुराने ढंग और पुरानी चालों से चले तो पिछड़ जायगा और मिट जायगा। तब विज्ञान भी बहुत धीमी गति से चलता था, दस हजार साल हो जाते थे और बैलगाड़ी में कोई फर्क नहीं पड़ता था। बैलगाड़ी, बैलगाड़ी ही होती। लोहार के औजार में कोई फर्क नहीं पड़ता था, वह वही औजार होता था। सब चीजें ऐसे चलती थीं जैसे कि नदी बहुत आहिस्ता सरकती है कि पता ही नहीं

चलता कि नदी सरकती भी है। किनारे करीब-करीब वहीं के वहीं होते थे। तब धर्म भी इतनी ही गति से चलता था, ताल-मेल था। धर्म अभी भी उसी गति से चलता है। पर अन्य सब चीजें बहुत तीव्रता में हैं। तब धर्म अगर पिछड़ जाय, और लोगों के पैर से उसका कोई ताल-मेल न रह जाय, तो आश्चर्य नहीं है। इसलिए भी जल्दी है।

जितनी तीव्रता से जगत् का पौद्गलिक ज्ञान बढ़ता है और जितनी तीव्रता से विज्ञान कदम भरता है, उतनी ही तीव्रता से, बल्कि थोड़ा उससे भी ज्यादा धर्म को गति करना चाहिए। क्योंकि धर्म जब भी आदमी से पीछे पड़ जाय तभी आदमी का नुकसान होता है। धर्म को आदमी से सदा थोड़ा आगे होना चाहिए। क्योंकि आदर्श सदा ही थोड़ा आगे होना चाहिए। नहीं तो आदर्श का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वास्तविकता से आदर्श सदा ही आगे, पार जाने वाला होना चाहिए। यह बहुत बुनियादी फर्क है। अगर हम राम के जमाने में जायँ तो धर्म सदा आदमी से आगे है और अगर हम आज अपने जमाने में आयें तो आदमी सदा धर्म से आगे है। आज तो सिर्फ वही आदमी धार्मिक हो पाता है, जो बहुत पिछड़ा हुआ आदमी है। उसका कारण है। क्योंकि धर्म से सिर्फ उसके ही पैर मिल पाते हैं। जितना विकासमान हुआ है आज आदमी, उसका धर्म से सम्बन्ध छूट गया है। या औपचारिक सम्बन्ध रह गया है जो वह दिखाने के लिए रखता है। धर्म होना चाहिए आगे। अब यह कितनी हैरानी की बात है कि अगर हम बुद्ध और महावीर के जमाने को देखें तो उस युग के जो श्रेष्ठतम लोग हैं वे धार्मिक हैं और अगर हम आज के धार्मिक आदमी को देखें तो हमारे बीच का जो निकृष्टतम आदमी है, वही धार्मिक है। उस जमाने में जो अग्रणी है, चोटी पर है, वह धार्मिक था और आज जो बिलकुल ग्रामीण है, पिछड़ा हुआ है, वही धार्मिक है। बाकी कोई धार्मिक नहीं है। यह क्या हुआ? धर्म आदमी से आगे कदम नहीं बढ़ा पा रहा है। इसलिए भी जल्दी है।

फिर इसलिए भी जल्दी है कि कुछ समय इमरजेंसी के होते हैं, आपत्कालीन होते हैं। जैसे, आप कभी अस्पताल की तरफ जा रहे होते हैं तब आपकी चाल वही नहीं होती जो आपकी दूकान की तरफ जाने की होती है। वह चाल आपत्कालीन इमरजेंसी की होती है। आज करीब-करीब हालत ऐसी है कि अगर धर्म कोई बहुत प्राणवान आन्दोलन जगत् में पैदा नहीं कर पाया तो पूरी मनुष्यता भी नष्ट हो सकती है। समय बिलकुल इमरजेंसी का है, अस्पताल की तरफ जाने जैसा है। जहाँ कि हो सकता है कि हमारे पहुँचने के पहले मरीज मर जाय, हमारे औषधि लाने के पहले मरीज मर जाय। हमारा निदान हो और मरीज मर जाय।

इसका कोई व्यापक परिणाम धार्मिक चिन्तकों पर नहीं है। यद्यपि चिन्तकों की बजाय सारी दुनिया की नयी पीढ़ी पर और विशेषकर विकसित मुल्कों की नयी पीढ़ी पर इसका बहुत सीधा परिणाम हुआ है। और वह परिणाम यह हुआ है कि आज अमरीका के युवक को माँ-बाप यह कहें कि तू युनिवर्सिटी में पढ़ ले, दस साल पढ़ लेगा तो अच्छी नौकरी मिल जायेगी। तो युवक यह कहता है कि क्या इस बात की गारन्टी है कि दस साल बाद मैं बचूँगा या यह आदमी बचेगा ? और माँ-बाप के पास जवाब नहीं है। कल का भरोसा सर्वाधिक कम आज अमरीका में है। सर्वाधिक कम ! कल बिलकुल गैर-भरोसे का है। कल होगा भी कि नहीं इसका पक्का नहीं। इसलिए इतनी जोर से आज को ही भोग लेने की आकांक्षा है। यह आकस्मिक नहीं है। चारों तरफ साफ स्थिति है कि चीजें कल बिखर सकती हैं बिलकुल। करीब-करीब ऐसी हालत है जैसे कि मरीज खाट पर पड़ा हो और किसी भी क्षण मर सकता हो। ऐसी पूरी आदमियत है। इसलिए भी जल्दी है कि अगर आपके निदान बहुत धीमे और मद्धिम रहें तो कोई परिणाम होने वाला नहीं है। इसलिए बहुत तीव्रता में मैं हूँ कि जो भी हो सकता है वह शीघ्रता से होना चाहिए। और यह जो मैंने कहा कि गाँव-गाँव घूमूँगा वह मैं एक अर्थ में अपने हिसाब से घूम लिया हूँ। जिन आदमियों का मुझे ख्याल है वह मेरे ध्यान में हैं। अब उन पर काम करने की बात है। बड़ी कठिनाई तो इसलिए होती है कि मेरे ख्याल में कोई आदमी आ जाय इससे उस आदमी के ख्याल में मैं आ जाऊँ, यह जरूरी थोड़े ही है। और जब तक उसके ख्याल में मैं न आ जाऊँ, तब तक कुछ काम नहीं हो सकता।

काम शुरू भी किया है। और कब आऊँगा, जाऊँगा उसका भी प्रयोजन यही है कि काम कर सकूँ। क्योंकि मैं आता ही जाता रहूँगा तो काम नहीं हो पायेगा। लोगों को तैयार करके बहुत जल्दी, दो वर्ष में गाँव-गाँव भेज दूँगा। वह बिलकुल जा सकेंगे। और वैसी स्थिति नहीं आयेगी। सौ नहीं, दस हजार आदमी तैयार किये जा सकेंगे। जो बहुत संकट के काल होते हैं, खतरे के भी होते हैं, सम्भावना के भी होते हैं। उपयोग नहीं किया जाय तो दुर्घटना हो जाती है, उपयोग कर लिया जाय तो बहुत सम्भावना के हो जाते हैं। बहुत लोगों को तैयार भी किया जा सकता है। बहुत साहस का भी योग है, बहुत-से लोगों को बहुत अज्ञात में छलांग के लिए भी तैयार करवाया जा सकता है। वह होगा। यह तो जो बाहर की स्थिति है, वह मैंने कही, लेकिन जब भी कोई युग ध्वंस के करीब आता है, तब भीतरी तल पर बहुत-सी आत्माएँ विकास के आखिरी किनारे पर पहुँच गयी होती हैं। उनको जरा-से धक्के की जरूरत होती है। जरा-से इशारे से उनकी

छलांग लग सकती है। जैसे आम तौर से हम जानते हैं कि मौत करीब देख कर आदमी मौत के पार का चिन्तन करने लगता है—एक-एक व्यक्ति जैसे मौत निकट आती है, वैसे धार्मिक होने लगता है। मौत करीब आती है तो सवाल उठने शुरू होते हैं मौत के पार के, अन्यथा जिन्दगी इतनी उलझाये रखती है कि सवाल ही नहीं उठते। जब कोई पूरा युग मरने के करीब आता है, तब करोड़ों आत्माओं में भी वह ख्याल भीतर से आना शुरू होता है। वह भी सम्भावना है, उसका उपयोग किया जा सकता है।

इसलिए मैं धीरे-धीरे अपने को बिलकुल कमरे में ही सिकोड़ लूंगा। मैं आने-जाने को समाप्त ही कर दूंगा। अब तो जो लोग मेरे ख्याल में हैं, उन पर मैं काम शुरू करूँगा। उनको तैयार करके भेजूंगा और जो मैं अकेला घूम कर नहीं कर सकता हूँ, वह मैं दस हजार लोगों को घुमा कर करवा सकूंगा। मेरे लिए धर्म बिलकुल वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तो ठीक वैज्ञानिक टेकनीक के ढंग से सारी चीजें मेरे ख्याल में हैं। जैसे-जैसे लोग तैयार होते जायेंगे, उनको वैज्ञानिक टेकनीक दे देनी है। वह उस टेकनीक से जाकर काम कर सकेंगे हजारों लोगों पर। मेरी जरूरत नहीं रहेगी उसमें। मेरी जरूरत इन लोगों को खोजने के लिए थी। इनसे अब मैं काम ले सकूंगा। मेरी जरूरत कुछ सूत्र निर्मित करने की थी, वह निर्मित हो गये। एक वैज्ञानिक का काम पूरा हो गया। अब टेक्नीशियंस का काम होगा। एक वैज्ञानिक काम पूरा कर लेता है। उसने बिजली खोज कर रख दी। एक एडीसन ने बिजली का बल्ब बना दिया। अब तो गाँव का मिस्त्री भी बिजली के बल्ब को ठीक कर लेता है और लगा देता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। इसके लिए किसी एडीसन की जरूरत नहीं है। अब मेरे पास करीब-करीब पूरा ख्याल है। अब जैसे-जैसे लोग तैयार होते जायेंगे, उनको ख्याल देकर, प्रयोग करवाकर भेज सकूंगा, वे जा सकेंगे। सब मेरी नजर में है। क्योंकि सभी को सम्भावनाएँ दिखायी नहीं पड़तीं, अधिक लोगों को तो वास्तविकताएँ ही दिखायी पड़ती हैं। सम्भावनाएँ देखना बहुत कठिन बात है। सम्भावनाएँ मेरी नजर में हैं। बहुत सरलता से, बुद्ध और महावीर के समय में जैसे बिहार के छोटे-से इलाके की स्थिति थी, वैसी दस वर्ष में सारी दुनिया की स्थिति हो सकती है—उतने ही बड़े व्यापक पैमाने पर। लेकिन बिलकुल नये तरह का धार्मिक आदमी निर्मित करना पड़ेगा। नये तरह का संन्यासी निर्मित करना पड़ेगा। नये तरह के ध्यान और योग के प्रयोग की क्रियाएँ निर्मित करनी पड़ेंगी। वह सब निर्मित हैं, मेरे ख्याल में। जैसे-जैसे लोग मिलते जायेंगे उनको दे दिया जायगा, वे उनको आगे पहुँचा देंगे। खतरा भी बहुत है, क्योंकि अवसर चूके तो बहुत नुकसान भी होगा। अवसर का

उपयोग हो सके तो इतना कीमती अवसर मुश्किल से कभी आता है, जैसा आज है। सभी अर्थों में युग अपने शिखर पर है, अब आगे उतार ही होगा। अब अमरीका इससे आगे नहीं जा सकेगा, बिखराव होगा। यानी छू चुका अपने शिखर को और बिखर गया। अब कोई सम्भावना नहीं है। इस युग की सभ्यता बिखराव पर है। आखिरी क्षण है।

यह हमको ख्याल में नहीं है कि बुद्ध और महावीर के बाद हिन्दुस्तान बिखरा। बुद्ध और महावीर के बाद फिर वह स्वर्ण-शिखर नहीं छुआ जा सका। लोग आमतौर से सोचते हैं कि बुद्ध और महावीर की वजह से ऐसा हो गया होगा। बात उल्टी है। असल में बिखराव के पहले ही बुद्ध और महावीर की हैसियत के लोग काम कर पाते हैं, नहीं तो काम नहीं कर पाते। क्योंकि बिखराव के पहले जब सब चीजें अस्त-व्यस्त होती हैं, सब चीजें गिरने के करीब होती हैं। जैसे व्यक्ति के सामने मौत खड़ी हो जाती है, वैसे ही पूरी सामूहिक चेतना के सामने मौत खड़ी हो जाती है। और समूहगत चेतना धर्म के और अज्ञात के चिन्तन में उतरने के लिए तैयार हो जाती है। इसलिए यह सम्भव हो पाया कि बिहार जैसी छोटी-सी जगह में पचास-पचास हजार संन्यासी महावीर के साथ घूम सके। यह फिर सम्भव हो सकता है। इसकी पूरी सम्भावना है। उसकी पूरी कल्पना और योजना मेरे ख्याल में है। मेरा जो काम था वह एक अर्थ में पूरा हो गया है। इस अर्थ में पूरा हो गया है कि मैं जिन लोगों को खोजना चाहता था, उन्हें मैंने खोज लिया है। उन्हें भी पता नहीं, मैंने उन्हें खोज लिया है। अब उनसे काम लेना है और उनको तैयार करके भेज देना है।

इसलिए भी जल्दी है कि जब तक मेरा काम था, तब तक मैं बहुत आश्वस्त था, बहुत जल्दी की बात नहीं थी। मैं जानता था, क्या मुझे करना है, वह मैं कर रहा था। अब मुझे दूसरों से काम लेना है। अब उतना आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता। अब तक मैं कर रहा था तब मुझे ख्याल था कि क्या करना है, बात ठीक थी। अब दूसरों से काम लेना होता है तो कठिनाई और जटिलता पैदा होती है। फिर मैं मित्रों को साफ कर ही देना चाहता हूँ कि मैं जल्दी में हूँ, उन्हें भी जल्दी में होना चाहिए। क्योंकि जिस गति से लोग चलते हुए दिखायी पड़ते हैं, उस गति से वे कहीं नहीं पहुँचने वाले हैं। मुझे तीव्रता में देख कर शायद उनमें भी तीव्रता आ सकती है, अन्यथा आ नहीं सकती। जैसे कि जीसस को करना पड़ा। जीसस ने तो कहा कि बहुत जल्दी सब समाप्त होने वाला है। मगर लोग कितने नासमझ हैं, हिसाब लगाना मुश्किल है। जीसस ने कहा, बहुत जल्दी सब समाप्त हो जायगा। तुम अपनी आँखों के सामने देखोगे कि सब नष्ट हो जायगा। चुनाव का वक्त

करीब है। और जो आज नहीं बदलेंगे, उनको बदलने का फिर कोई मौका नहीं बचेगा। जिन्होंने सुना, समझा, उन्होंने अपने को बदला; लेकिन अधिक लोग तो पूछने लगे कि कब आयेगा वह समय ? अभी भी दो हजार साल बाद, ईसाई-पण्डित, पुरोहित और थियोलोजिस्ट्स बैठकर विचार कर रहे हैं कि जीसस से कुछ गलती हो गयी मालूम होती है। क्योंकि अभी तक तो वह डे आफ जजमेंट आया नहीं। निर्णय का दिन अभी तक नहीं आया, दो हजार साल हो गये। जीसस ने कहा था अभी, तुम्हारे सामने अभी यह घटना घट जायेगी। अभी मेरे देखते-देखते चुनाव का वक्त आ जायगा और जो चूक जायेंगे वह सदा के लिए चूक जायेंगे। वह अभी तक नहीं आया। यह जीसस से कोई भूल हो गयी या फिर हमने कुछ समझने में भूल कर दी ? कुछ हैं जो कहते हैं कि जीसस को कुछ पता नहीं था, इसलिए बड़ी गलती की, इसलिए और भी कुछ पता नहीं होगा। कुछ हैं जो कहते हैं कि शास्त्र की व्याख्या में भूल हो गयी। लेकिन उनमें से किसी को पता नहीं कि जीसस जैसे लोग जो कहते हैं, उसके प्रयोजन होते हैं। इतनी तीव्रता जीसस ने पैदा की, उस तीव्रता में जो लोग समझ सके वह लोग रूपान्तरित हो गये। और आदमी तीव्रता में ही रूपान्तरित होता है। नहीं तो रूपान्तरित नहीं होता। उसको अगर पता है कि कल हो जायगा तो वह आज तो करेगा ही नहीं। वह कहेगा, कल करेंगे। उसे अगर पता है, परसों हो जायगा, तो वह कहेगा परसों कर लेंगे। उसे अगर पता चल जाय कि कल है ही नहीं, तो ही रूपान्तरण की क्षमता आती है।

एक लिहाज से बिखराव की जो सभ्यताएँ होती हैं, यानी जब सभ्यता बिखरती है तब कल बहुत संदिग्ध हो जाता है। कल का कोई पक्का नहीं रहता। तब आज ही सिकोड़ना पड़ता है हमें। भोगना हो तो भी आज सिकोड़ना पड़ता है और त्यागना हो तो भी आज सिकोड़ना पड़ता है। नष्ट करना हो स्वयं को तो भी आज ही करना पड़ता है, रूपान्तरित करना हो तो भी आज ही करना पड़ता है। तो एक घटना तो घट गयी है कि यूरोप और अमेरिका भोगने के लिए आज तैयार हो गये हैं कि जो करना है, आज कर लो। कल की फिक्र छोड़ दो। पीना है पी लो, भोगना है भोग लो, चोरी करना है चोरी कर लो, खाना है खा लो। जो करना है आज कर लो। यह एक घटना घट गयी भौतिक तल पर। मैं चाहता हूँ कि आध्यात्मिक तल पर भी यह घटना घट जानी चाहिए कि जो रूपान्तरण करना है वह आज कर लो, अभी कर लो। वह ठीक इसके समानान्तर घट सकती है। उसकी तीव्रता में मैं हूँ कि वह ख्याल में आना शुरू हो जाय। निश्चय ही, पूरब से ही वह ख्याल आ सकेगा। उसकी हवा पूरब से ही आ सकेगी। पश्चिम इस हवा में जोर से बह सकता है।

चीजों के पैदा होने का भी स्थान होता है। जैसे सभी वृक्ष सब मुल्कों में नहीं हो जाते हैं। अलग-अलग जड़ें होती हैं, जमीन होती है, हवा होती है, पानी होता है। ऐसे ही सभी विचार भी सभी भूमियों में नहीं हो जाते हैं। भिन्न प्रकार की जड़ें होती हैं, हवा होती है, पानी होता है। विज्ञान पूरब में पैदा नहीं हो सका। उस वृक्ष के लिए पूरब में जड़ें नहीं हैं। धर्म पूरब में ही पैदा होता रहा, उसके लिए बड़ी गहरी जड़ें हैं, उसकी हवा बिलकुल तैयार है, पानी बिलकुल तैयार है, भूमि बिलकुल तैयार है। अगर विज्ञान पूरब में आया है, तो पश्चिम से ही आया है। अगर धर्म पश्चिम में जायगा तो पूरब से ही जायगा। कई बार मुकाबला पैदा हो सकता है। जैसे जापान है—मुल्क पूरब का है, लेकिन विज्ञान में पश्चिम के किसी भी मुल्क से मुकाबला ले सकता है। फिर भी मजे की बात है, सिर्फ इमीटेट करता है, कभी भी मौलिक नहीं हो पाता। ऐसा भी कर लेता है कि इमीटेशन के आगे मूल भी फीका दिखायी पड़ने लगता है। लेकिन फिर भी होता इमीटेशन है। जापान एक चीज इनवेंट नहीं कर पाता। यानी एक आविष्कार नहीं कर पाता। रेडियो बनायेगा तो वह अमेरिका से आगे बनाने लगेगा, लेकिन फिर भी होगी वह नकल। वह नकल में कुशल हो जायगा। लेकिन होंगे वृक्ष पराये। उनको लगा लेगा, सम्हाल लेगा। लेकिन नये अंकुर उसके पास अपने नहीं आने वाले हैं।

ठीक धर्म के साथ, पश्चिम में आगे जा सकता है अमेरिका भी। अगर पूरब से हवा पहुँच जाय तो वह एक मामले में पूरब को फीका कर सकेगा। लेकिन फिर भी वह नकल होगी। जो इनीशिएटिव है, जो पहला कदम है वह पूरब के हाथ में है। इसलिए जल्दी मैं इस फिक्र में हूँ कि पूरब से लोग तैयार किये जायें और पश्चिम में भेजे जा सकें। जोर से वहाँ आग पकड़ लेगी, लेकिन चिनगारी पूरब से ही जानी है।

●